॥ ओ३म् ॥

लिंग पुराण में क्या है ?

लेखक :

स्व० श्रीयुत पं० भीमसेन विद्यालङ्कार

सम्पादक

स्व० श्री स्वामी वेदानन्द जी तीर्थ

दयानन्द उपदेशक विद्यालय,

गुरुदत्त भवन, लाहौर

प्रथमावृत्ति] संवत् १९९६

द्वितीयावृत्ति] संवत् २०३५ मूल्य १)

प्रकाशक :–
पण्डिता राकेशरानी
अध्यक्ष दबानन्द संस्थान
वेद मन्दिर दिल्ली-३६
दूरभाष : ८०१२२१

दयानन्द संस्थान
नई दिल्ली का प्रकाशन

दिल्ली कार्यालय :
दयानन्द संस्थान बेद मंदिर
१५६७ हरध्यानसिंह मार्ग, नई दिल्ली-५
दूरभाष : ५६६६३६

●

लेखक :
स्व० पं० भीमसेन विद्यालंकार

मूल्य : एक रु० : १)

●

प्रथम संस्करण :
द्वितीय संस्करण : संवत् २०३५

मुद्रक :
बिराट् प्रिंटिंग एजेन्सी
पहाड़ी धीरज, देहली-६

लेखक के दो शब्द

लिङ्गपुराण की समालोचना को पाठकों के सामने उपस्थित करते हुए—इस समालोचना के प्रेरक भाव के विषय में एक-दो शब्दों का कहना अप्रासङ्गिक नहीं है।

भारतवर्ष में कई सदियों से—पुराण भी वेदों की भांति स्वतः सिद्ध माने जाने लगे थे। विद्वान् लोग इनकी समालोचना करना उचित नहीं समझते थे, परिणामतः यह भी वेदों की भांति स्वतः सिद्ध तथा धर्मग्रन्थ माने जाने लगे।

ऋषि दयानन्द ने इस प्रथा में परिवर्तन किया। ऋषि दयानन्द ने पुराणों को तर्क की कसौटी पर परखा और जनता में इस लहर को प्रचलित किया कि पुराण भी लौकिक संस्कृत साहित्य की भांति मनुष्यकृत हैं, और समालोचना के विषय हो सकते हैं।

ऋषि दयानन्द ने दिग्दर्शन कराने के लिए सत्यार्थप्रकाश में पुराण साहित्य की आलोचना की। अब दिन-दिन यह लहर स्वयं प्रबल हो रही है। अभी तक आर्य विद्वान् तथा उपदेशक केवल मात्र ऋषि दयानन्द कृत पुराण-समालोचना के आधार पर ही पुराणों की छानबीन करते थे। अब सनातनधर्मी पौराणिक पण्डित भी पुराणों की समालोचना करने लगे हैं।

संस्कृत विद्या प्रचार के साथ-साथ आर्यसमाज में भी संस्कृतमूल ग्रन्थों के अनुशीलन करने की प्रवृत्ति बढ़ रही है। यह पुराणालोचन ग्रन्थमाला इस प्रवृत्ति की प्रदर्शक है। यह समालोचना "वादे वादे जायते तत्वबोधः" "वाद से यथार्थ ज्ञान प्राप्त होता है" की भावना से प्रेरित होकर लिखी गई है।

मैं चाहता हूं कि इस समालोचना को पढ़ कर लिङ्ग पुराण को धर्म ग्रन्थ—या ऐतिहासिक ग्रन्थ मानने वाले सज्जन भी लिङ्ग पुराण का स्वयं अनुशीलन करें और सचाई को जान कर उसका ग्रहण करें।

यह समालोचना आर्यसमाज में संस्कृत साहित्य के अनुशीलन की प्रवृत्ति को बढ़ाने के लिये की गई है। यदि किन्हीं श्रीमानों के हृदयों में इस समालोचना को पढ़ कर, मूल संस्कृत ग्रन्थों के पढ़ने की आकांक्षा पैदा हुई, तो मैं अपने यत्न को सफल समझूंगा।

लाहौर
२ मार्च १९८६ —भीमसेन विद्यालङ्कार

अपनी ओर से

आज सत्य-असत्य के निर्णय करने की प्रवृत्ति समाप्त होती जा रही है। क्या मानना चाहिए, क्या छोड़ना चाहिए, यह चिन्तन भी हमने त्याग दिया है।

हमारे प्राचीन शास्त्रों में जहाँ सत्य, अध्यात्म व लौकिक ज्ञान मार्ग का विशद् आदर्श वैज्ञानिक वर्णन मिलता है, वहाँ विदेशी आक्रान्ताओं व विचारों के प्रभाव से कतिपय ग्रंथ ऐसे भी रचे गए, जिन्हें पढ़कर मन-मस्तिष्क भ्रमित हो जाता है।

प्रस्तुत पुस्तक में ऐसे ही एक ग्रन्थ का विवेचन विद्वान् लेखक ने प्रस्तुत किया है। इसे पढ़कर बहुत से अज्ञान के पृष्ठ स्वयं अपनी कहानी कह सकेंगे ऐसा हमारा विश्वास है।

हमारा उद्देश्य अमृत की धारा को अमृत के रूप में ही प्रस्तुत करना है। किसी के भी मानस को ठेस पहुंचाने का हमारा तनिक भी उद्देश्य नहीं है।

पुस्तक के प्रणेता स्वयं पं० भीमसेन विद्यालंकार भी स्वयं एक आदर्श रत्न थे। वे सत्य के पुजारी और अनुकरणकर्ता ही नहीं अपितु उसके लिए बड़े से बड़ा बलिदान देने को भी सदा तत्पर रहे। ऐसे व्यक्ति द्वारा नीर-क्षीर विवेक होगा, ऐसा हमारा विश्वास है।

हमारी आस्था है कि 'वेद' को धर्म ग्रंथ मानने वाले सभी राम-कृष्ण के अनुयायी "ओ३म्" पताका के नीचे संगठित हो जाएं और जो आसुरी शक्तियाँ बढ़ रही हैं उनका सामना करें, इसके लिए आत्म शोधन आवश्यक है। शोधन और आलोड़न की दृष्टि से पुस्तक आपको अर्पित है—आप सारे पूर्वाग्रह त्याग इसे पढ़ें, आपको नयी ज्योति के दर्शन होंगे—यह हमारा विश्वास है।

अध्यक्ष	आशीर्वाद के साथ
दयानन्द संस्थान वेद मन्दिर	राकेश रानी पंडित
लेखराम नगर दिल्ली-३६	२१-६-७८

लिंग पुराण की आलोचना

(संपादकीय वक्तव्य)

विष्णुपुराण के मत से अष्टादश महापुराणों में लिंग पुराण ग्यारहवां है, शिवपुराण, श्रीमद्भागवत, नारदपुराण, ब्रह्मवैवर्त्त पुराण, वराह पुराण, मत्स्य पुराण, पद्मपुराण तथा स्वयं लिंगपुराण का भी ऐसा ही मत है। देवी भागवत की दृष्टि से यह पंद्रहवां है, कूर्मपुराण की दृष्टि से यह दसवां है, किन्तु मार्कण्डेय की दृष्टि से यह यज्ञ पुराण ही नहीं। वहु सम्मति से इसका महापुराण होना तो सिद्ध हो जाता है, किन्तु मार्कण्डेय पुराण का अनादर तथा अप्रामाण्य होता है, यदि उसको प्रामाणिक मानें, तो अन्यों को अप्रमाण मानना होगा। पुराण भक्तों को इस आपत्ति के वारण करने का कोई उपाय सोचना चाहिए।

वर्त्तमान लिंग पुराण असली नहीं।

मत्स्य में लिखा है—

"यत्राग्निर्लिंगमध्यस्थः प्राह देवो महेश्वरः।
धर्म्मार्थकाममोक्षार्थमाग्नेयमधिकृत्य च॥
कल्पान्तं लिंगमित्युक्तं पुराणं ब्रह्मणा स्वयम्।
तदेकादशसाहस्रं फल्गुन्यां यः प्रयच्छति॥

जिस ग्रन्थ में देव महेश्वर ने अग्निर्लिंगमध्यस्थ होकर अग्नि कल्पान्त में धर्म्म, अर्थ, कर्म्म और मोक्षार्थ कथा प्रकाश की थी, एकादश सहस्रयुक्त वह पुराण ही ब्रह्मा द्वारा लिंग नाम से वर्णित हुआ है।" (अष्टादश पुराण दर्पण २७ पृष्ठ) नारद पुराण में भी यह अग्निकल्प, सम्बन्धी कहा गया है—

यच्च लिंगाभिधं तिष्ठन् वह्निलिंगे हरोभ्यधात्।
मह्यं धर्म्मादि सिद्धचन्त अग्निकल्पकथाश्रयम्॥

यह श्लोक भी अ० पु० द० २७९ पुराण से लिया गया है।

किन्तु वर्त्तमान लिंगपुराण में 'ईशानकल्प' सम्बन्धी कहा है।" अष्टादश-पुराण दर्पण" कार श्रीयुत पण्डित ज्वालाप्रसाद मिश्र जी भी ऐसा मानते हैं।

पृष्ठ २८१-२८२ पर वे लिखते हैं—

"प्रचलित लिंगपुराण में ही लिखा है—

ईशान कल्पवृत्तान्तमधिकृत्य महात्मना।
ब्रह्मणा कल्पितं पूर्वंपुराणं लैङ्गमुत्तमम्॥

ईशान कल्प बृत्तान्त प्रसंग में पूर्व काल में महात्मा ब्रह्मा द्वारा जो पुराण कथित हुआ था ।।

इससे स्पष्ट सिद्ध है, कि मत्स्य पुराण तथा नारद पुराण को जो लिंगपुराण ज्ञात था, वह प्रचलित लिंग पुराण से अवश्य भिन्न था । श्रीयुत अष्टादशपुराण दर्पण के कर्त्ता श्रीयुत पं० ज्वाला प्रसाद जी को यह बात खटकी है । वे अ० पु० द० पृष्ठ २८२ पर लिखते हैं—

"पूर्व में ही कह चुके हैं, मात्स्य और नारदीयमत से अग्निकल्प प्रसंग में लिंग पुराण और ईशान कल्प प्रसंग में अग्निपुराण वर्णित हुआ है । मत्स्य पु० ५३ अ० ऐसे स्थल में ईशान कल्पाश्रयी लिंग एक है वा नहीं, अधिक सम्भव है बौद्ध-प्रभाव खर्व और ब्राह्मण्यप्रभाव के अभ्युदय के साथ जब पुराणों का पुनः संस्कार होता था, उस समय आग्नेय पुराणोक्त ईशान कल्पकी कथा आकर लिंग पुराणों में प्रविष्ट हुई है और अग्निकल्प का प्रसंग संभवतः अग्निपुराणका विषयीभूत समझकर लिंग में अग्निकल्प की कथा का स्पष्ट उल्लेख नहीं किया ।"

पण्डित जी ने केवल लिंग पुराण का ही खण्डन नहीं किया अपितु साथ ही अग्निपुराण को भी नकली बता दिया है । इतना ही नहीं, पण्डित जी और भी स्पष्ट लिखते हैं—

"तथापि परवर्त्ती काल में शैवलोगों के अभ्युदय में बीच-बीच में शिव की प्रशंसा और विष्णु की कथा भी निवेषित हुई है । आदि पुराण समूह किसी किसी विशेष सम्प्रदाय की सामग्री होने पर भी उस में संप्रदाय वा देवता विशेष की निन्दा की बात नहीं समझी जा सकती । संप्रदाय की द्वैषाद्वैषी में पुराणों में भी ऐसी विद्वेषसूचक श्लोकावली बहुत पीछे प्रविष्ट हुई थी । ऐसे स्थल में सामान्य प्रक्षिप्त श्लोक समूह छोड़ने पर इस लिंग पुराण को एक अति प्राचीन पुराण कहा जा सकता है ।" पृ० २८२

पण्डित जी ने यहाँ एक चतुरता करने का प्रयत्न किया है । विष्णु की निन्दा न लिखकर 'विष्णु की कथा' शब्द लिखे हैं, ताकि लोग समझें, कि विष्णु की कथा— उत्कर्ष द्योतक कथा इस पुराण में है, किन्तु इन की पूर्वापर वाक्य रचना ने इनकी चतुराई का भण्डाफोड़ कर दिया है । क्या ही अच्छा होता, यदि पण्डित जी 'प्रक्षिप्त श्लोकावली' यहां लिख देते । अस्तु । इतना भी बहुत है, जो पुराणों में प्रक्षेप को स्वीकार किया है । क्यों कि जब 'प्रक्षेप' को निकालने लगेंगे, तो १८ पुारणों के स्थानों में केवल एक और वह भी छोटा सा पुराण शेष बच रहेगा । श्री पण्डित जी ने इसी पर सन्तोष नहीं किया, इसके आगे वह लिखते हैं—

"अरुणाचलमाहात्म्य गौरीकल्याण, पंचाक्षर माहात्म्य, रामसहस्र, रुद्र माहात्म्य और सरस्वती इत्यादि कई छोटी-छोटी पोथी लिङ्ग पुराण के अन्तर्गत हैं ।

इसके अतिरिक्त वासिष्ठ लैंग नामक एक उप पुराण पाया जाता है। हलायुध का ब्राह्मण सर्वस्व में बृहल्लिग पुराण वचन उद्धृत हुआ है, किन्तु अब यह पुराण नहीं देखा जाता।" पृ० २८२

इन सारे उद्धरणों को देने का प्रयोजन केवल इतना मात्र दिखाना है, कि जिस किसी भी प्रकार से पुराणों के मण्डन के लिये तत्पर हुए पण्डित जी को भी स्वीकार करना पड़ा है कि पुराणों में गड़बड़ है, पुराण के कई श्लोक पुराणों में से निकल गये हैं, और कई और डाल दिये गये हैं। जब ऐसी अवस्था है तो इन में प्रतिपादित धर्म असली पुराण संहिता के हैं, क्यों न इन सब को त्याग कर केवल वेद को धर्म ग्रन्थ मानें, जिसमें एक अक्षर का भी भेद नहीं आया।

प्रकृत आलोचना कल्याण (बम्बई) की छपी पुस्तक पर से की गई है, उसके अन्त के—

'इदं पुस्तकं कल्याण नगर्यां श्रीकृष्णदासात्मजेन गंगाविष्णुना स्वकीये "लक्ष्मीवेंकटेश्वर" (स्टीम) यन्त्रालयेऽङ्कयित्वा प्रकाशितम्। सम्बत् १९८१ शक १८४६

विशेष कारणों से यह आलोचना संक्षिप्त बनी है। बहुत से विषय तो इसमें नहीं आये।

जिस भावना—आर्य जाति में सुसंस्कार उत्पन्न करने की सम्भावना—से यह आलोचना लिखी गई है, उसी से सज्जन पाठक इसे स्वीकार करें।

विद्वदनुचर
वेदानन्द तीर्थ

विषय सूची

ओ३म्

लिंग पुराण में क्या है ?

संस्कृत साहित्य में पुराण शब्द का इतिहास विशेष महत्व रखता है। पुराण शब्द का इतिहास जाने विना, किसी भी पुराण की समालोचना करना कठिन है। पुराण शब्द का प्रयोग वेदों, ब्राह्मणों तथा काव्यों में भिन्न-भिन्न अर्थों में पाया जाता है। वेद संहिताओं में पुराण शब्द का 'अष्टादश पुराण ग्रन्थ' अर्थ सम्भव ही नहीं हो सकता है। क्योंकि सब विद्वान् इस बात में सहमत हैं कि वैदिक साहित्य व संस्कृत साहित्य में वेद संहिताएं, रचना काल या आविर्भाव काल की दृष्टि से सबसे पुरानी है। संस्कृत साहित्य के किसी भी ग्रन्थ में—ब्राह्मणों या पुराणों में यह नहीं लिखा कि वेदों का आविर्भाव अब हुआ है। वेद संहिताओं के आविर्भाव के समकाल में किसी भी प्रकार के पुराण ग्रन्थ के अस्तित्व को आज तक, जहां तक हमारा ज्ञान है, किसी भी विद्वान् ने स्वीकार नहीं किया। इसलिए यदि कोई सम्प्रदायी पौराणिक भाई वेद के किसी मन्त्र से पौराणिक गाथाओं का निर्देश लेकर पुराणों के प्राचीनत्व को सिद्ध करना चाहे, तो उनके समक्ष उपरिलिखित स्थापना करनी चाहिए।

कई जैनी भाई वेद में 'ऋषभ' शब्द का प्रयोग देख कर, जैन सम्प्रदाय की प्राचीनता के साथ-साथ जैन पुराणों के प्राचीनत्व को भी सिद्ध करने का यत्न करते हैं। उनके प्रयत्न का उत्तर भी पूर्वोक्त युक्ति व तर्क से दिया जाना चाहिए। भाव यह है कि वेद संहिताओं में आए पुराण शब्द का किसी भी प्रचलित पुराण ग्रन्थ से सम्बन्ध नहीं है।※

वेदों के बाद ब्राह्मणों, उपनिषदों, मनु धर्मशास्त्र तथा रामायण और महाभारत में आए हुए पुराण शब्द के अर्थ पर विचार करने की आवश्यकता है।

ब्राह्मण ग्रन्थों में निर्दिष्ट या पठित पुराण शब्द का अर्थ क्या है इसके सम्बन्ध में अपनी राय न देकर, हम सायणाचार्य के शब्दों में ही इसका अर्थ पाठकों के सामने रखेंगे।

※ अष्टादश पुराण दर्शन में "ऋचाः सामानि छंदांसि पुराणं यजुषा सह"। अथर्व. ११।७।२४।

तमितिहासं च पुराणश्च गाथाश्च नाराशंसीरिति ॥ अथर्व का. १५।

ऐतेरेय ब्राह्मण की व्याख्या करते हुए, उपक्रम में सायणाचार्य लिखते हैं—

"देवासुराः संयत्ता आसन्नित्यादय इतिहासाः, इदं वा अग्रे नैव किञ्चिदासीदित्यादिकं जगतः प्रागवस्थामुपक्रम्य सर्गप्रतिपादकं वाक्यजातं पुराणम् ।"

इसका अर्थ इस प्रकार है—

'देवासुरा संयत्ता आसन्निति' आदि मनुष्य की मनोवैज्ञानिक वृत्तियों का वर्णन करने वाले वाक्य इतिहास कहे जाते हैं। क्योंकि मनोवैज्ञानिक सचाईयाँ मनुष्य के जीवन में इतिहास की अन्य घटनाओं की तरह बार बार दोहराई जाती हैं। 'इदं वा अग्ने—' आदि सृष्टि प्रक्रिया तथा सृष्टि रचना का वर्णन करने वाले वाक्य पुराण कहे जाते हैं।"

सायणाचार्य भी यही मानते हैं कि वेदों और ब्राह्मणों में जहां-जहां पुराण शब्द आता है उसका अर्थ सृष्टि ज्ञान वर्णन करने वाले वाक्यों से है, किसी ग्रन्थ-विशेष से नहीं।

उपनिषदों में—बृहदारण्यक तथा छान्दोग्य में ही पुराण शब्द का प्रयोग विशेष रूप से मिलता है। परन्तु इन उपनिषदों के ब्राह्मणों के साथ विशेष रूप से सम्बद्ध होने से पूर्व सा अर्थ समझना चाहिए। अन्य उपनिषदों—में कठ आदि में—पुराण शब्द का प्रयोग—जीवात्मा के लिए भी किया गया है। उनमें भी ग्रन्थ विशेष को लक्ष्य करके पुराण शब्द का प्रयोग नहीं किया गया।

उपलभ्यमान मनुस्मृति में भी पुराण शब्द आजकल के प्रचलित अर्थों में प्रयुक्त नहीं किया गया। मानव धर्म शास्त्र का निर्माण ब्राह्मणों से पूर्व या उनके समय में ही हुआ था। इसके बाद जब हम वाल्मीकि रामायण का अध्ययन करते हैं तो वहां पुराण शब्द के सम्बन्ध में हमें इस प्रकार का परिचय प्राप्त होता है—

उपलभ्यमान वाल्मीकि रामायण में लौकिक पुराणों में प्रचलित कथाओं का वर्णन तो मिलता है परन्तु सारे रामायण ग्रंथ में ग्रंथ वाचक पुराण शब्द का पाठ कहीं नहीं है। जिस समय हनुमान् सुग्रीव का राजदूत बन कर, रामचन्द्रजी के

इन मन्त्रों में आए हुए पुराण शब्द द्वारा पुराणों की प्राचीनता सिद्ध करने का यत्न किया गया है। पुराण शब्द की यौगिक व्युत्पत्ति 'पुरा च नवश्च' से की जाती है। इसका अभिप्राय यह है कि जो सदा एक सा रहे। प्रथम मन्त्र में "पुराणं यजुषा" शब्द का अर्थ नित्य एकरस यजुर्वेद से है।

दूसरे मन्त्र भाग में भी एक वचन व जातिवाची पुराण शब्द का भाव किसी ग्रन्थ विशेष से नहीं लिया जा सकता। यह एक विशेष प्रकार के ज्ञान का निदर्शक है।

पास आता है, उस समय हनुमान् की विद्वत्ता का वर्णन करते हुए वेदों और व्याकरणादि शास्त्रों के नामकीर्तन के साथ हमें पुराण शब्द का पाठ नहीं मिलता। वाल्मीकि रामायण का माहात्म्य दिखाते हुए, आम काव्य शब्द से ही उसकी प्रशंसा की है, पुराण ग्रन्थों में उसकी परिगणना नहीं की गई। शिवपुराण आदि की कथाएँ बाल्मीकि रामायण में मिलती हैं। पुराणान्तर्गत कथाओं और रामायणान्तर्गत कथाओं के संविधान की तुलना करने से पता लगता है कि रामायण के काव्य लेखक ने इन कथाओं को लौकिक इतिहास के ढंग पर वर्णन किया है। पुराणों में कथाओं के नायक को ईश्वरीय अवतार का रूप दिया गया है। राम का चरित्र वर्णन गुणशाली पुरुष की भांति किया गया है, अवतारी पुरुष समझ कर उसका वर्णन नहीं किया गया। इसलिये वाल्मीकि रामायण द्वारा, प्रचलित पुराणों के महत्व को सिद्ध करना ठीक नहीं।

रामायण के बाद, महाभारत का इतिहास या महाकाव्य हमारे सामने उपस्थित होता है। महाभारत के तीन रूप हैं। प्रथम रूप का नाम 'जय' है। इसके लेखक व्यास थे। यही जय नामक ग्रन्थ भारत युद्ध का वर्णन करता है। दूसरा रूप "भारत" नाम से प्रचलित होकर प्रसिद्ध है। इसके संग्रह कर्ता या बनाने वाले व्यास के शिष्य वैशम्पायन थे। तीसरे रूप का नाम "महाभारत" है। इसके रचयिता सौति थे। जय और भारत में पौराणिक गाथाओं की सत्ता स्वीकार करने के लिये कोई पुष्ट प्रमाण नहीं है। 'जय' श्लोक बद्ध ग्रन्थ था।

एतावत्पर्वशतं पूर्वं व्यासेनोक्तं महात्मना।
यथावत्सूतपुत्रेण लोमहर्षणिना ततः
उक्तानि नैमिषारण्ये पर्वाण्यष्टादशैव तु॥

(आ-अ-२-२४)

व्यास ने सौ पर्व के ग्रन्थ का निर्माण किया। उसके बाद नैमिषारण्य में सूत पुत्र लोमहर्षणि ने १८ पर्वों का निर्माण किया।

इस श्लोक से सिद्ध होता है कि वर्तमान समय के १८ पर्व सौति ने बनाये हैं, भारतीय संस्कृति-साहित्य के विद्वान् इस बात पर सहमत हैं। संस्कृत साहित्य के प्रचलित रीति रिवाज इसके समर्थक हैं कि सौति की महाभारत से ही वर्तमान समय के १८ पुराणों का विकास हुआ है। व्यास और भारत के कर्ता (जनमेजय के समकालीन) वैशम्पायन के समय पौराणिक धर्म की उत्पत्ति हुई थी। अतः वह उस धर्म के ग्रन्थ की रचना नहीं कर सकते।

परन्तु जैन धर्म तथा बौद्ध धर्म के प्रचार के बाद जब वेद निन्दक लोगों ने रही सही भारतीय धार्मिक प्रथाओं को नष्ट करने का यत्न किया, उस समय के विद्वान् ब्राह्मणों ने लोगों की प्रवृत्तियों को देखकर जैनियों तथा बौद्धों के अनुकरण

में पुराणों और अवतारों की कल्पना की । जैन तथा बौद्ध लोगों ने जिन नये साधनों द्वारा वैदिक धर्म की निन्दा करके, अपने विचारों को फैलाने का उपक्रम बांधा था, ब्राह्मणों ने भी वही ढंग स्वीकार किया । भाव यह है कि जैन तथा बौद्ध धर्म के बाद पौराणिक धर्म की सृष्टि हुई । तभी पुराणों की रचना, या उनका 'महाभारत में संनिवेश हुआ । प्रसिद्ध विद्वान् श्री नरसिंह चिन्तामणि वैद्य ने भी अपनी 'महाभारत मीमांसा' पुस्तक में यही निर्णय किया है । वर्तमान युग के अद्वितीय समन्वयवादी आचार्य दयानन्द ने भी सत्यार्थ प्रकाश में पौराणिक धर्म तथा पुराणों की रचना के सम्बन्ध में ऐसे ही विचार प्रकट किए हैं । ऋषि दयानन्द व्यास व वैशम्पायन को -राणों का कर्ता नहीं मानते । व्यास भगवान् ने जिन वेदान्त सूत्रों की रचना की है उनमें भी पुराणों का नाम-निर्देश कहीं दिखाई नहीं देता । गीता के दार्शनिक विचारों वाले श्लोकों में भी (जो कि महाभारत समुद्र में उज्ज्वल रत्नों की भांति चमक रहे हैं) पुराणों का नाम निर्देश कहीं भी दिखाई नहीं देता । श्री कृष्ण भगवान् कहते हैं कि 'मैं वेदों में साम वेद हूं, पाण्डवों में धनंजय हूं ।' परन्तु यह कहीं नहीं कहा कि मैं भागवत हूं या शिवपुराण । सारे विवेचन का निचोड़ यह है कि भारत युद्ध के समय इस देश में पुराण नाम से कोई धर्मग्रन्थ प्रचलित नहीं थे ।

भारतीय युद्ध के बाद, संस्कृत साहित्य में शुक्रनीति और चाणक्य कृत कौटिल्य-अर्थ शास्त्र तथा कामन्दकीय नीति शास्त्र भारतीय विचारों को प्रतिबिम्बित करते हैं।

कौटिल्य अर्थशास्त्र में पुराण नाम से व्यवहृत ग्रन्थ को इतिहास शब्द के अन्तर्गत समझा जाता था। "पुराणमितिवृत्तमाख्यायिकोदाहरणं धर्मशास्त्रमर्थशास्त्रं चेतीतिहासः" कौटिल्य अर्थशास्त्र पृ० १० वृद्ध संयोग प्रकरण में :—

"पुराण इतिवृत्त धर्मशास्त्र अर्थशास्त्र आख्यायिका उदाहरण यह सब विचार इतिहास शब्द के अन्तर्गत हैं ।"

शुक्रनीति के प्रथम अध्याय में यह श्लोक विचारणीय है—

अङ्गानि वेदाश्चत्वारो मीमांसा न्यायविस्तरः ।
धर्मशास्त्रं पुराणानि त्रयीदं सर्वमुच्यते ॥१५५
इतिहासाः पुराणानि स्मृतयो नास्तिकं मतम् ।

श्लोक २६ शु० अध्याय चतुर्थ, तृतीय प्रकरण ।

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च ।
वंशानुचरितं यस्मिन्पुराणं तद् विकीर्तितम् ॥

शु० अ० ४ । वृ० प्रकरण श्लो० ५३ ।

शुक्र नीति में आए पुराण शब्द का अर्थ श्लोक ५३ से हो जाता है । सृष्टि प्रलय वंशावलियां मन्वन्तर आदि का जिस में वर्णन हो वह पुराण है ।

अमर कोष प्रथम काण्ड शब्दादि वर्ग में "पुराणं पंचलक्षणम्" शब्द से पता लगता है कि इस समय पुराण शब्द ग्रन्थवाचक अर्थ में प्रयुक्त होने लग गया था। परन्तु आश्चर्य इस बात पर होता है कि अमरकोष में वर्तमान समय में प्रचलित १८ पुराणों में से किसी एक पुराण का नाम भी नहीं लिखा गया। यह आश्चर्य तब और भी अधिक बढ़ जाता है जब हम इसी कोष के प्रथम काण्ड के प्रारम्भ में ही पुराणों में वर्णित देवी देवताओं के नाम देखते हैं। इन देवी-देवताओं में पौराणिक देवी-देवताओं के अलावा 'जिन' और 'बुद्ध' का नाम भी लिखा गया है। मालूम यह होता है कि अमरकोष का निर्माण उस समय हुआ था जब भारत के ब्राह्मण धीरे-धीरे जैनों और बौद्धों के अनुकरण में देवी-देवताओं की कल्पनाएं कर रहे थे। अमरकोष के लेखक अमरसिंह विक्रमादित्य के नवरत्नों में से थे। गुप्त वंश के इस विक्रमादित्य ने उज्जैनों में प्राचीन वैदिक धर्म को प्रचलित करने के लिए, संस्कृत साहित्य को जीवित जागृत बनाने का यत्न किया था। हमारी सम्पति में वर्तमान समय में उपलभ्यमान पुराणों का निर्माण इसी गुप्त वंश से प्रारम्भ होता है।

निश्चित सदी की निश्चित तिथि निर्दिष्ट नहीं की जा सकती। परन्तु यह कहने में हमें जरा भी संकोच नहीं कि गुप्त वंश के शासन काल के बाद ही भारत वर्ष में पौराणिक साहित्य का जन्म हुआ था। सौति ने महाभारत के १८ पर्वों का निर्माण करके, पीछे आने वाले लेखकों के लिये उदाहरण पेश कर दिया था। महाभारत की भांति पुराणों में भी संसार भर की सब चीजें मिल जाती हैं। इसी समय से जैन आदि मत मतान्तरों के मुकाबले में इन ग्रन्थों को धार्मिक ग्रन्थ का स्थान प्राप्त हुआ।

इसी समय जैन तथा बौद्ध साहित्य के प्रचार के कारण वेद विद्या के लुप्त होने पर, वेद भाषा को भूल जाने पर, प्राचीन वैदिक धर्म के विद्वानों को पुराणों के निर्माण करने की आवश्यकता हुई। इसी समय से वेदों के स्थान पर पुराणों को धर्मग्रन्थ का रूप दिया जाने लगा। यदि पुराणों को धर्म-ग्रन्थ न मानकर साहित्य के मिश्रित विषयों का विवेचक ग्रन्थ माना जाय तो हमें कोई आपत्ति नहीं।

ऋषि दयानन्द ने भी पुराणों का जो खंडन किया है उसका भाव यही है कि भारतवासी या विचारशील सज्जन पुराण को श्रुतिस्थानीय या श्रुतिसमकक्ष धर्मग्रन्थ न मानें। हमारे इस विवेचन का उद्देश्य यही है कि लिङ्ग पुराण सम्बन्धी अन्तरंग तथा बाह्य प्रमाणों से जनता के सामने यह बात रखें कि लिङ्गपुराण धर्म ग्रन्थ है या नहीं। इस सामान्य विवेचना द्वारा हमने सामान्यतया सब पुराणों के विषय में विचार किया है। अब हम लिङ्ग पुराण के विषय में विशेष विचार करेंगे।

पौराणिक सम्प्रदायों में लिंग पुराण का स्थान

भागवत आदि सम्प्रदाय, भागवत पुराण को धर्म ग्रन्थ मान कर अपना कार्य्य निवाह करते हैं। लिंग पुराण को अपना धर्मग्रन्थ मानने वाला कोई सम्प्रदाय नहीं दिखाई देता। लिंग पुराण का मुख्य आराध्यदेव शिव है। इन शिव महाराज की अर्चना तथा वन्दना के लिये शिव पुराण के समग्रभाग अर्पित हैं। पौराणिक सम्प्रदायों की दृष्टि से हम कह सकते हैं कि पौराणिक सम्प्रदायों में लिङ्ग पुराण का विशेष स्थान नहीं है। यदि आज भारत वर्ष से या संस्कृतवाङ्मय से लिङ्ग पुराण ग्रन्थ मिट जाय तो इससे किसी सम्प्रदाय की क्षति नहीं होगी। लिङ्ग तथा शिव लिङ्ग की पूजा करने वाले अपनी भक्ति भावनाओं को शिव पुराण की कथाओं तथा स्तुतियों से तृप्त कर लेंगे।

१८ पुराणों को पौराणिक धर्म के पण्डितों ने सात्विक राजस तथा तामस तीन विभागों में विभक्त किया हुआ है। इस विचारक्रम में लिङ्ग पुराण तथा शिव पुराण को अन्य कुछेक पुराणों के साथ तामस पुराणों की श्रेणी में परिगणित किया गया है।

लिंग पुराण का ऐतिहासिक महत्व

यदि पौराणिक सम्प्रदाय की दृष्टि से लिंग पुराण का कोई महत्व नहीं, तो सम्भावना की जा सकती है कि शायद ऐतिहासिक दृष्टि से इसका कोई विशेष उपयोग हो, विशेष कर, इस पुराण से भारत के इतिहास पर विशेष प्रकाश डलता है। इस सम्बन्ध में हमने जहाँ तक इस पुराण का अनुशीलन किया है, हमें इसमें भारतीय इतिहास के सम्बन्ध में कोई नयी बात या नयी महत्वपूर्ण घटना का (जिसका दूसरे पुराणों में वर्णन न हो) क्रमबद्ध वर्णन नहीं मिलता। यह मत केवल हमारा ही नहीं है। पुराणों के आधार पर, भारतीय इतिहास का निर्णय करने का यत्न करने वाले श्रीयुत पारजीटर महोदय भी हमारी स्थापना का समर्थन करते हैं। पारजीटर महोदय Dynasties of the Kali age की भूमिका में लिखते हैं :—

Accounts of the dynasties that reigned in India during the Kali age are found in Matsya, Vayu. Brahmanda. Vishnu, Bhagvata Garuda and Bhavishya Puranas.

अर्थात् भारत में राज करने वाले राजवंशों का विवरण मत्स्य, वायु, ब्रह्माण्ड, विष्णु, भागवत, गरुड़, और भविष्य पुराण में उपलब्ध होता है।

इस स्थापना से यह स्पष्ट है कि ऐतिहासिक दृष्टि से इन्हीं पुराणों की उपयोगिता है अन्य लिङ्गपुराण तथा शिवपुराण आदि की नहीं। अब शेषात्—

लिङ्गपुराण की आलङ्कारिक व्याख्या के सम्बन्ध में ही कुछ विचार करना चाहिए। इसी प्रकार से हम लिङ्ग पुराण की समालोचना कर सकेंगे।

लिङ्गपुराण की आलङ्कारिक व्याख्या

वर्तमान समय में जिस लिङ्ग की मन्दिरों में पूजा होती है, यह लिङ्ग दृश्यमान मूर्ति है। इसकी पूजा तथा इसका निर्माण कई प्रकार से किया जाता है। लिङ्गपुराण में इसका विशेष वर्णन उत्तरार्ध में मिलता है। अथवा शिवार्चन-चन्द्रिका, तथा तत्व प्रकाशिका जैसे ग्रन्थों में इसकी पूजा आदि का विशेष विवरण मिलता है। वर्तमान समय में एकलिङ्ग जी के मन्दिरों अथवा नैपाल जैसे पहाड़ी देशों में लिङ्ग पूजा या पशुपति पूजा के विशेष प्रचार के साथ-साथ पूजनीय धातु या मृत्तिका से बने लिङ्ग मिलते हैं। लिङ्ग पुराण तथा अन्य ग्रन्थों के अध्ययन से हम इस निश्चय पर पहुंचे हैं कि लिङ्ग शब्द किसी भाव-विशेष को द्योतित करता है। लिङ्ग पूजा का भाव पत्थर निर्मित लिङ्ग पूजा से नहीं था। प्रारम्भ में लिङ्ग शब्द का प्रयोग, उसका चिन्तन तथा ध्यान दृश्यमान पत्थर निर्मित लिङ्ग से भिन्न पदार्थ के लिए होता था। लिङ्ग शब्द का क्या भाव था इसके सम्बन्ध में हम स्वयं न लिख कर लिङ्ग पुराण के प्रमाण ही पाठकों के सामने उपस्थित करते हैं :—

ऋषयः ऊचुः —

कथं लिङ्गमभूल्लिङ्गे समभ्यर्च्यः स शङ्करः।
किं लिङ्गकस्तथा लिङ्गी सूत! वक्तुमिहार्हसि॥

रोमहर्षण उवाच :—

एवं देवाश्च ऋषयः प्रणिपत्य पितामहम्।
अपृच्छन् भगवल्लिंङ्गं कथमासीदिति स्वयम्॥
लिङ्गे महेश्वरो रुद्रः समभ्यर्च्यः कथं त्विति।
किं लिङ्गकस्तथा लिङ्गी सोप्याह च पितामहः॥

पितामह उवाचः—

प्रधानं लिङ्गमाख्यातं लिङ्गी च परमेश्वरः॥

लिंग पुराण पूर्व भाग १७ अ० के ५ श्लोक

ऋषयः—शङ्कर की लिङ्ग पूजा का क्या भाव है? कौन लिङ्ग है, कौन लिङ्गी है? हे सूत! इसका वर्णन करो।

रोमहर्षणः—एक वार देवों ने प्रजापति से यही प्रश्न पूछा था।

पितामह ने उत्तर दिया था :—प्रधान प्रकृति लिङ्ग नाम से कही जाती परमात्मा लिङ्गी है।

लिङ्गपुराण के टीकाकार भी व्याख्या करने से पूर्व भूमिका में इसी भाव को प्रकट करते हैं—

प्रधानं हि शिवादेवी प्रकृतिः सा निगद्यते।
पूर्षु देहेषु या शेते पुरुषः पञ्चविंशकाः ॥
जीवो गजाननो ज्ञेयो गणेशस्तु स्मृतो यतः ॥✲

आगे टीकाकार लिखते हैं कि "अस्मिंस्तु शिव एव परमात्मेति बहुशः उक्तं श्रोतृणां स्फुटं भविष्यति' इस लिङ्ग पुराण में शिव शब्द का प्रयोग परमात्मा के लिये किया गया है यह बात विद्वान् पाठकों को स्पष्ट दिखाई देगी।

लिङ्गपुराण का प्रारम्भ नारद की यात्रा से किया गया है। वर्णन किया गया है कि नारद संगमेश्वर शुक्रेश्वर आदि स्थानों में शङ्कर तथा उसके लिङ्गो की पूजा करके नैमिषारण्य में पहुंचे। वहां देवसभा लगी थी। इतने में रोमहर्षण नाम का सूत उस सभा में पहुंचा। देवों तथा ऋषियों ने रोमहर्षण से लिङ्गपुराण की कथा करने की प्रार्थना की। सूत नारद ब्रह्मादि को नमस्कार कर के लिङ्गोंत्पत्ति का वर्णन श्लोकों से करते हैं। यदि हम इन श्लोकों पर विशेष विचार करें तो पता लग जायगा कि सूत या होमहर्षण जिस लिङ्ग का माहात्म्य दिखा रहे हैं वह लिङ्ग आज कल मन्दिरों में उपलब्ध लिङ्ग से बिलकुल भिन्न है। इन श्लोकों के पढ़ने से पता लगता है कि जिस प्रकार आजकल भी साधारण लोग कहते हैं कि प्राकृतिक जगत् की घटनाएं किसी बड़ी शक्ति का (लिङ्ग) सूचक हैं। उसी प्रकार यहां यह कहा गया है नारद ने संगमेश्वर तथा शुक्रेश्वर आदि के दर्शन किये, यह क्षेत्र भी लिङ्ग है।

क्योंकि इन क्षेत्रों के प्राकृतिक सौन्दर्य को देखकर, परमात्मा की स्मृति हृदय में जागृत हुए बिना नहीं रहती। सूत उवाच :

नमस्कृत्य महादेवं ब्रह्माणं च जनार्दनम्।
मुनीश्वरं तथा व्यासं वक्तुं लिङ्गं स्मराम्यहम् ॥१८॥
शब्दब्रह्मतनुं साक्षाच्छब्दब्रह्मप्रकाशकम्।
वर्णावयवमव्यक्तलक्षणं बहुधा स्थितम् ॥१९॥
अकारोकारमकारं स्थूलं सूक्ष्मं परात्परम्।
ओङ्काररूपमृग्वक्त्रं सामजिह्वासमन्वितम् ॥२०॥
यजुर्वेदमहाग्रीवमथर्वहृदयं विभुम्।
प्रधानपुरुषातीतं प्रलयोत्पत्तिवर्जितम् ॥२१॥

✲ प्रधान, प्रकृति, शिवा यह सब समानार्थक हैं। प्रत्येक देह में रहने वाला पच्चीसवां तत्व आत्मा 'पुरुष' कहलाता है। इसी को जीवात्मा, गणेश और गजानन नाम से कहते हैं।

तमसा कालरुद्राख्यं रजसा कनकाण्डजम् ।
सत्त्वेन सर्वगं विष्णु निर्गुणत्वे महेश्वरम् ॥२२॥
प्रधानावयवं व्याप्य सप्तधाधिष्ठितं क्रमात् ।
पुनः षोडशधा चैव षड्विंशकमजोद्भवम् ॥२३॥
सर्गप्रतिष्ठासंहारलीलार्थं लिङ्गरूपिणम् ।
प्रणम्य च यथान्यायं वक्ष्ये लिङ्गोद्भवं शुभम् ॥२४॥

लिंग पुराण—पूर्व भाग—अध्याय प्रथम

ईशानकल्पवृत्तान्तमधिकृत्य महात्मना ।
ब्रह्मणा कल्पितं पूर्वं पुराणं लैङ्गमुत्तमम् ॥
ग्रन्थकोटिप्रमाणं तु शतकोटिप्रविस्तरे ।
चतुर्लक्षेणसंक्षिप्ते व्यासैः सर्वान्तरेषु वं ॥
व्यस्तेष्टा दशधा चैव ब्रह्मादौ द्वापरादिषु ।
लिङ्गमेकादशधा प्रोक्तं मया व्यासाच्छ्रुतं च तत् ॥
अस्यैकादशसाहस्रे ग्रन्थमानमिह द्विजाः ।
तस्मात्संक्षेपतो वक्ष्ये न श्रुतं विस्तरेण यत् ॥
चतुर्लक्षेणसंक्षिप्ते कृष्णद्वैपायनेन तु ।
अथैकादशसाहस्रैः कथितो लिङ्गसम्भवः ॥

लिंग पुराण अध्याय २

सूत कहता है :

महादेव, ब्रह्मा, जनार्दन और मुनीश्वर व्यास को नमस्कार करके मैं लिंग का वर्णन करता हूं। यह लिंग ही शब्द ब्रह्म का प्रकाशक है। यही अनेक वर्ण के रूप में अव्यक्त रूप से प्रकट होता है। यह लिंग वेदमय है, ओंकारमय है। प्रकृति से परे प्रलय का कारण है। संसार की सृष्टि तथा प्रलय के लिये ही लिंग रूप धारण करता है।

व्यास ने विस्तृत लक्ष श्लोकों वाले लिंग पुराण की रचना की थी, मैं संक्षिप्त लिंग पुराण की कथा करता हूं।"

प्रथमाध्याय के इन श्लोकों का भाव यह है कि यजुर्वेद आदि के मूल कारण, सृष्टि प्रलय तथा स्थिति के लिये प्रकृति रूप में नाना चित्र रूपों को धारण करने वाले को नमस्कार करके, लिंग पुराण का वर्णन किया गया है। 'षड्विंशकजोद्-भवम्' की व्याख्या करते हुए लिंग पुराण के टीकाकार निम्न लिखित श्लोक से बताते हैं कि उनका ध्येय प्रतिपाद्य विषय कौन है ?

इह षड्विंशको ध्येयो ध्याता वै पञ्चविंशकः ।
चतुर्विंशकमव्यक्तं महदाद्यास्तु सप्त च ॥

महांस्तथा त्वहंकारं तन्मात्रं पंचकं पुनः।
कर्मेन्द्रियाणि पंचैव तथा बुद्धीन्द्रियाणि च।
मनश्च पञ्च भूतानि शिवः षड्विंशकस्ततः ।।

इस लिंग पुराण में २६ तत्वों से युक्त पुरुष प्रतिपाद्य विषय का ध्येय है। ७ महदादि तत्त्व ५ अहंकार तन्मात्रा ५ कर्मेन्द्रियाँ, ५ ज्ञानेन्द्रियां, मन, बुद्धि, आत्मा तथा परमात्मा स्वयं ही इस पुराण में विचारणीय लक्ष्य है।

लिंग पुराण का ध्येय देव परमात्मा है। इसी प्रकार ऊपर के उद्धरण में द्वितीय अध्याय के श्लोकों में 'ईशान कल्प वृत्तान्तम्' श्लोक में बताया है कि ब्रह्मा ने लिंग पुराण का निर्माण ईशान कल्प की सृष्टि का वर्णन करने के लिए किया है। इस श्लोक के अनुसार लिंग पुराण का प्रतिपाद्य विषय ईश्वर तथा कल्प सृष्टि का वर्णन करना है। वर्तमान प्रचलित लिंगपूजा का कहीं निर्देश नहीं। इस का विषय उद्देश्य में कहीं परिगणन नहीं किया गया।

इन श्लोकों से यह भी पता लगता है कि वर्तमान समय में उपलभ्यमान लिंग पुराण असली लिंग पुराण नहीं। मूल पुराण ब्रह्मा ने बनाया था, उसका संक्षेप व्यास ने किया। वर्तमान पुराण का निर्माण सूत रोमहर्षण ने किया।

इसी वर्तमान लिंगपुराण का विषय वर्णन करते हुए ब्रह्मोत्पत्ति तथा व्यासावतार के बाद लिंगोत्पत्ति तथा लिंगाराधन लिंगस्नान का वर्णन किया गया है। इस विषय-क्रम से पता लगता है कि लिंगोद्भव लिंगस्नान तथा लिंगाराधन आदि की प्रथाएं ब्रह्मा तथा व्यासावतार के बाद प्रचलित हुई हैं। यदि यह बातें लिंग पुराण की आवश्यक नित्य सनातन अंग थीं तो इनका वर्णन सबसे पूर्व, ब्रह्मोत्पत्ति व्यासावतार से पूर्व होना चाहिए।

विवेचन का भाव यह है कि लिंगपुराण का उपक्रम पत्थरमयी लिंग पूजा से नहीं किया गया है। इसका उद्देश्य तथा प्रारम्भ परमात्मा के सृष्टि-उत्पत्ति स्थिति सम्बन्धी स्वरूप के वर्णन से किया गया है। वर्तमान प्रचलित लिंग पूजा का वर्णन सूत या रोमहर्षण नाम के सूत द्वारा किया गया है। ब्रह्मा तथा व्यास के नाम से प्रचलित लिंग पुराणों की विषय चर्चा में इसका निर्देश नहीं पाया जाता।

सं०—लिंगोत्पत्ति तथा लिंग का स्वरूप क्या है इसका स्पष्ट वर्णन, विष्णु और ब्रह्मा की पारस्परिक लड़ाई के बाद किया गया है। विष्णु और ब्रह्मा आपस में इस बात पर लड़ रहे थे कि दोनों में कौन बड़ा है। इतने में दोनों के सामने एक तत्व प्रकट हुआ। वही लिंग कहा गया है। दोनों में शर्त लगी कि जो इस लिंग का पता लाएगा कि यह कौन है और कहां तक फैला हुआ है, वही बड़ा होगा। विष्णु लिंग का पता लगाने के लिए पाताल की तरफ गया। ब्रह्मा ऊपर की ओर। दोनों को कुछ पता नहीं लगा। दोनों थक गए।

दोनों की तपस्या तथा स्तुति से प्रसन्न होकर लिंग ने दर्शन दिए। इस प्रकरण में लिंग का जो वर्णन किया गया है उस पर विशेष विचार करना चाहिए। इस विवरण से भी यही पता लगता है कि लिंग का अभिप्राय पत्थर के लिंग से नहीं, अपितु परमात्मा से है—

आवयोश्चाभवद्युद्धं सुघोरं रोमहर्षणम्।
प्रलयार्णवमध्ये तु रजसा बद्धवैरयोः॥
एतस्मिन्नन्तरे लिंगमभवच्चावयोः पुरः।
विवादशमनार्थं हि प्रबोधार्थं च परस्परम्॥
ज्वालामालासहस्राढ्यं कालानलशतोपमम्।
क्षयवृद्धिविनिर्मुक्तमादिमध्यान्तवर्जितम्॥
अनौपम्यमनिर्देश्यमव्यक्तं विश्वसम्भवम्॥
तस्य ज्वाला सहस्रेण मोहितो भगवान् हरिः॥

लिं. पूर्व भाग. १७ अध्याय ३५ श्लोक

विष्णु और ब्रह्मा के सामने आदि मध्य से हीन, चमकता हुआ लिंग प्रकट हुआ। इस अध्याय के पौर्वापर्य प्रसंग के अध्ययन से पता लगता है कि यह प्रकृति की विशेषावस्था का नाम है। परन्तु इतना स्पष्ट है कि वर्तमान समय में लिंग नाम से पूजनीय पदार्थ का इससे कोई सम्बन्ध नहीं है। जब दोनों थक गए तब उन्होंने क्या देखा :

पृष्ठतः पार्श्वतश्चैव चाग्रतः परमेश्वरम्।
प्रणिपत्य मया सार्धं सस्मार किमिदं त्विति॥
तदा समभवत्तत्र नादो वै शब्दलक्षणः।
ओमोमिति सुरश्रेष्ठः सुव्यक्तः ऽलुतलक्षणः॥
लिंगस्य दक्षिणे भागे तदा पश्यत्सनातनम्।
आद्यवर्णमकारं तु उकारं चोत्तरे ततः॥

लिं. पु. पूर्व. अ. १७,।५० श्लोक।

भावार्थ :—तब विचारने पर पता लगा कि "यह ओम् रूप परमात्मा है।"

दोनों ने थक कर, अपने आप को उस महाप्रभु सर्वदेव भव के सामने समर्पित कर दिया। वहां उन्होंने लिंग के दाईं बाईं तरफ वर्णमाला को देखा।

प्रणम्य भगवान् विष्णुः पुनश्चापश्यदूर्ध्वतः।
ओंकारप्रभवं मन्त्रकलापञ्चकसंयुतम्॥
शुद्धस्फटिकसंकाशं शुभाष्टत्रिंशदक्षरम्।
मेघाकारमभूद्रूपः सर्वधर्मार्थसाधकम्॥

गायत्रीप्रभवं मंत्रं हरितं वश्यकारकम् ।
चतुर्विंशति वर्णाढ्यं चतुष्फलमनुत्तमम् ।।
यजुर्वेदसमायुक्तं पञ्चत्रिंशच्छुभाक्षरम् ।
कलाष्टकसमायुक्तं सुश्वेतं शाक्तिकं तथा ।।

० ० ०

सामोद्भवं जगत्पाद्यं वृद्धिसंहारकारणम् ।।
अथ दृष्ट्वा कलावर्णमृग्यजुःसामरूपिणम् ।
ईशानमीशमुकुटं पुरुषाख्यं पुरातनम् ।।

लिं. पु. पूर्व भाग १७ अध्याय ८९ श्लोक.

विष्णु ने प्रणाम करके जब ऊपर देखा तो उन्हें शुद्ध स्फटिक जैसा चमकता हुआ, सब धर्मों से युक्त, सब मन्त्रों का आदि २४ वर्णों वाले चार कलाओं से अलंकृत परमात्मा के दर्शन हुए ।

इन श्लोकों में लिंग का जो स्वरूप वर्णन किया गया है वह परमात्मापरक है।

श्री महादेव ब्रह्मा और विष्णु का विवाद इस प्रकार शान्त करते हैं—

श्रीमहादेव उवाच—

प्रलयस्थितिसर्गाणां कर्त्ता त्वं धरणीपते ।
वत्स वत्स हरे विष्णो ! पालयैतच्चराचरम् ।।
त्रिधा भिन्नो ह्यहं विष्णो ब्रह्माविष्णुभवाख्यया
सर्गरक्षालयगुणैर्निष्कलः परमेश्वरः ।।
सम्मोहं त्यज भो विष्णो ! पालयैनं पितामहम् ।
पद्मे भविष्यति सुतः कल्पे तव पितामह !

महादेव ने कहा—हे प्रिय विष्णो ! इस संसार की स्थिति का कारण तुम हो । मैं ही ब्रह्मा विष्णु आदि रूपों में प्रकट होता हूं । इसके बाद से लोगों में लिंग-पूजा प्रचलित हुई ।

तदा द्रक्ष्यसि माँ चैवं सोपि द्रक्ष्यसि पद्मजः ।
एवमुक्त्वा स भगवांस्तत्रैवांतरधीयत ।।
तदा प्रभृति लोकेषु लिङ्गार्च्चा सुप्रतिष्ठिता ।
लिङ्गवेदी महादेवी लिङ्गं साक्षात्महेश्वरः ।।
लयन्मल्लिङ्गमित्युक्तं तत्रैव निखिलं सुराः ।
यस्तु लैङ्गं पठेन्नित्यमाख्यानं लिङ्गसंनिधौ ।।
स याति शिवतां विप्रो नात्र कार्या विचारणा ।।

श्री लिंग पुराण पूर्व भाग । २१ अध्या० ।।

इन श्लोकों की व्याख्या करते हुए टीकाकार लिखते हैं कि इसके बाद लिंग में परमात्मा के दर्शन होने से लिंगपूजा का प्रारम्भ हुआ। लिंगवेदी बनाई जाने लगी। इत्यादि।

परन्तु प्रश्न यह पैदा होता है कि इस सारे वर्णन में यह कहां लिखा है कि विष्णु और ब्रह्मा के सामने जो लिंग प्रकट हुआ उसके दाएं बाएं ओंकार तथा वर्णमाला थी—उसकी स्मृति में दृश्यमान लिंग बनाए जाते हैं या बनाये जाने चाहियें। इस व्याख्यान के उपसंहार वाक्य से तो यह पता लगता है कि परमात्मा परम लिंग हैं क्योंकि उसमें बड़ी से बड़ी शक्तियां लय हो जाती हैं। महादेवी और लिंग वेदी प्रकृति रूप वेदी के अन्दर ही शिव या परमेश्वर प्रकट हुए। इसी वेदी के दाएं बाएं परमात्मा के ज्ञानरूप अक्षरमाला प्रकट हुई है। इस प्रकार इस विवेचन से भी पाठकों के हृदय में यह बात हो जायगी कि लिंग पूजा का अभिप्राय पुराणों के अनुसार भी प्रस्तर पूजा से नहीं था। इस प्रकरण पर काफी विचार हो चुका है। अब हम निम्न लिखित उदाहरण के साथ लिंग पुराण की आलंकारिक व्याख्या को समाप्त करते हैं—

देवादयः पिशाचान्ना पशवः परिकीर्तिताः।
तेषां पतित्वात्सर्वेशो भवः पशुपतिः स्मृतः॥

लिंगपुराण पूर्व भाग ७ अ० ५४ श्लो. ६

देव लोगों से लेकर पिशाच जाति तक सारी मनुष्य सृष्टि पशु कहलाती है इनका पालक पति होने से परमात्मा पशुपति कहलाता है।

इस श्लोक में बताया गया है कि शिव या महादेव को पशुपति क्यों कहते हैं। क्योंकि परमात्मा प्राणिमात्र का पति है इसलिये उसे पशुपति कहते हैं। पशुपति के नाम से पुराणवादियों में जो विविध कल्पनाएं प्रचलित हैं वह भी लिंग पुराण के इस श्लोक के अनुसार निराधार हैं।

लिंग पुराण की आलंकारिक व्याख्या तथा आलंकारिक भाव को प्रकट करने वाले अनेक श्लोक तथा संवाद लिंग पुराण में स्थान-स्थान पर पाए जाते हैं। हमने उपलक्षण मात्र कुछएक का यहां निर्देश किया है। आशा है विचारशील पाठक इन पर अधिक विचार करेंगे।

इस प्रकरण को समाप्त करने से पूर्व, प्रचलित लिंग-पूजा के सम्बन्ध में एक शब्द यहां लिखना अप्रासंगिक नहीं है।

लिंग पुराण २४ अध्याय पूर्व भाग में ऋषि पूछते हैं—

कथं पूज्यो महादेवो लिङ्गमूर्तिर्महेश्वरः।
वक्तुमर्हसि चास्माकं रोमहर्षण साम्प्रतम्॥११॥

सूत उवाच—

देव्या पृष्टो महादेवः कैलाशे तां भगात्मजाम् ।
अङ्कस्थामाह देवेशो लिंगार्चनविधिं क्रमात् ।।२।।
तदा पार्श्वे स्थितो नन्दी शालङ्कायनात्मजः ।
श्रुत्वाखिलं पुरा प्राह ब्रह्मपुत्राय सुव्रताः ।।३।।
सनत्कुमाराय शुभं लिङ्गार्चनविधिं परम् ।
तस्माद् व्यासो महातेजः श्रुतवाञ्छ्रुतिसंमितम् ।।
स्नानयोगोपचारा च यथा शैल दिनो मुखात् ।
श्रुतवान् तत्प्रवक्ष्यामि स्नानाद्यं चार्चनाविधिम् ।।

ऋषि :—हे रोमहर्षण ! हमें यह बताओ कि लिंग मूर्ति महादेव की पूजा किस प्रकार करनी चाहिए ?

सूत ने कहा :—एक वार महादेव ने गोदी में बैठी शिवा पार्वती को लिंग-पूजा की विधि का उपदेश किया । उससे सनत्कुमार ने सुनी । सनत्कुमार से व्यास ने और व्यास से मैंने सुनी । वही आप लोगों को सुनाता हूं ।

ऋषियों के पूछने पर, सूत लिंग की पूजाविधि वर्णन करने का इतिहास सुना कर परम्परा से सुनी हुई विधि का वर्णन करता है ।

इस वर्णन में ईश्वर या महादेव की पूजा के साधन बताते हुए पांच महायज्ञों का वर्णन किया है, इन पाँच महायज्ञों में लिङ्ग पूजा का कहीं वर्णन नहीं । इसी प्रकार लिङ्ग का जो वर्णन किया है वह इस प्रकार है :—

वक्ष्यामि शृणु संक्षेपालिङ्गार्चनविधिक्रमम् ।
वक्तुं वर्षशतेनापि न शक्यं विस्तरेण यत् ।। २७ अ०२
एवं स्नात्वा यथान्यायं पूजा स्थानं प्रविश्य च ।
प्राणायामत्रयं कृत्वा ध्यायादेवं त्रियम्बकम् ।। २७ अ०२
पञ्चवक्त्रं दशभुजं शुद्धस्फटिकसन्निभम् ।
सर्वाभरणसंयुक्तं चित्रांवरविभूषितम् ।।
तस्य रूपं समाश्रित्य दहनप्लावनादिभिः ।
शैवीं तनुं समास्थाय पूजयेत्परमेश्वरम् ।।
देहशुद्धिं च कृत्वैव मूलमन्त्रं न्यसेत्क्रमात् ।
सर्वत्र प्रणवेनैव ब्रह्माणि च यथाक्रमम् ।। अ २७। श्लो० ५

स्नान के बाद पूजा स्थान में जाय तीन प्राणायाम करके परमात्मा महादेव का ध्यान करे । आरती सेचनादि क्रियाओं द्वारा शैवीतनु की भावना से स्वशरीर-शुद्धि कर के मूल मन्त्र का जप करके सर्वत्र व्यापक रूप से परमात्मा का चिन्तन करे ।

लिङ्ग स्वरूप वर्णन के स्पष्ट प्रकरण में लिङ्गपिण्डी का कहीं वर्णन नहीं किया गया। लिङ्गस्नान तथा पूजा-मन्त्रों का वार-वार वर्णन करते हैं परन्तु लिंग का कहीं वर्णन नहीं करते। २६ वें अध्याय के प्रारम्भ में दृश्यमान लिङ्ग की व्याख्या किए विना ही शैलादि इस प्रकार कथा छोड़ते हैं :—

आभ्यन्तरं प्रवक्ष्यामि लिङ्गार्चनमिहाद्य ते।
आग्नेयं सौरभरितं विम्बं भाव्यं ततो परि ॥१॥
गुणत्रयं च हृदये तथा चात्मत्रयं क्रमात्।
तस्योपरि महादेवं निष्कलं सकलाकृतिम् ॥२॥
कान्तार्धरूपदेहं पूजयेद्ध्यानविद्यया।
ततो वहुविधं प्रोक्तं चिन्त्यं तत्रास्ति चेद्यतः।
चित्रकस्य ततश्चित्रा अन्यथा नोपपद्यते ॥३॥
तस्माद्ध्येयं तथा ध्यानं यजमानः प्रयोजनम्।
स्मरेत्तन्नान्यथा जातु बुध्यते पुरुषस्य ह ॥४॥

लिङ्ग पूजा आभ्यन्तर तथा वाह्य रूप से दो प्रकार की होती है।

अमृत आग्नेय गुण त्रय रूप पर आतमा का हृदय में चिंतन करे। इसी हृदय पटल पर निष्कल महादेव की पूजा करे।

उपासक को चाहिये कि उस परमात्मा महादेव की चिन्ता अथवा चिन्तन करे।

आत्मा मन को साधन मानकर, प्रकृति रूप कान्ता के साथ विराजमान शिव व महादेव की पूजा ध्यान मन्त्र द्वारा करने का आदेश है। केवल इतना ही नहीं, आभ्यन्तर लिंग की पूजा करनेवालों की पूजा करने का आदेश मनुष्य मात्र को दिया है। "आभ्यन्तरार्चकाः पूज्या नमस्कारादिभिस्तथा" द्वारा ऐसे आभ्यन्तर लिङ्ग के पुजारियों की पूजा का आदेश किया। यह आभ्यन्तर लिङ्ग के पुजारी आकार तथा शकल में कैसे ही क्यों न हों। २८ अ. १३० श्लोक ॥

आश्चर्य है कि जिस लिंगपूजा—पिण्डिकापूजा का आज पौराणिक भाई माहात्म्य समझते हैं उसका वर्णन लिङ्गपुराण में २८ अध्यायों तक कहीं नहीं किया। वार-वार लिङ्ग का अर्थ तथा लिंगार्चन विधि का प्रकार पूछते हैं परन्तु उत्तर देते हुए कहीं भी लिंग पिण्डी का जिकर नहीं करते।

अन्त में श्वेत लिङ्गमूर्ति तथा महादेव की पूजा करता है। मृत्यु उस पर अधिकार करने आता है तब मृत्यु श्वेत की लिंग-पूजा की मखौल करता है। यह पहला मौका है जहाँ प्रस्तरमयी लिंग पूजा का जिकर किया हो और साथ ही इसकी मखौल भी की हो।

यम कहता है: —

लिङ्गेऽस्मिन्संस्थितः श्वेत तव रुद्रो महेश्वरः ।
निश्चेष्टोऽसौ महादेवः कथं पूज्यो महेश्वरः ॥

यम कहता है:—

हे श्वेत ! इस लिंग में रुद्र महेश्वर अवस्थित है । उसकी पूजा कैसे करनी चाहिए ?"

'तू इस निश्चेष्ट पत्थर रूप रुद्र की पूजा क्यों करता है ?' श्वेत इस प्रश्न का कोई उत्तर नहीं देता । पौराणिक सूत भी कोई जवाब नहीं देता । महादेव के शाप से, मृत्यु को मरवा देता है । इस प्रकरण के बाद ३१ वें अध्याय में, पिंडिका रूप वाले लिंग का पितामह इन श्लोकों में वर्णन करते हैं :—

एष चक्री च वज्री च श्रीवत्स कृतलक्षणः,
योगी कृतयुगे चैव त्रेतायां क्रतुरुच्यते ।
द्वापरे चैव कालाग्निः धर्मकेतुः कलौ स्मृतः ।
रुद्रस्य मूर्तयस्त्वेता येभिर्ध्यायन्ति पंडिताः ॥७॥
चतुरस्त्रं वहिश्चान्नाष्टास्त्रं पिंडिकाश्रये ।
वृत्रं सुदर्शनं योग्यमेवं लिंगं प्रपूजयेत् ॥
तमो ह्यग्नीरजो ब्रह्मा सत्वं विष्णुः प्रकाशकम् ।
मूर्तिरेका स्थिता चास्य मूर्तयः परिकीर्तिताः ॥
यत्र तिष्ठति तद्ब्रह्म योगेन तु समन्वितम् ।
तस्माद्धि देवदेवेशमीशानं प्रभुमव्ययम् ॥
आराधयन्ति विप्रेन्द्राः जितक्रोधा जितेन्द्रियाः ।
लिंगं कृत्वा यथा न्यायं सर्वलक्षणसंयुतम् ॥
अंगुष्ठमात्रं सुशुभं सुवृत्तं सर्वसम्मतम् ।
समनामं तथाष्टास्त्रं षोडशास्त्रमथापि वा ॥
सुवृत्तं मंडलं दिव्यं सर्वकामफलप्रदम् ।
वेदिकादिगुणाः तस्य समा वा सर्वसंमता ॥२६॥

चक्र धारण करने वाले वज्र का स्वामी श्रीवत्स चिह्न से अलंकृत कृतयुग में योगी, त्रेता में क्रतु, द्वापर में कालाग्नि, कलियुग में धर्मकेतु कहाता है । पण्डित लोग इन निम्नलिखित सद्मूर्तियों द्वारा शिव का ध्यान करते हैं । पिण्डी की बनी हुई चौकोन अठकोन अथवा गोलाकार सुदर्शन मूर्ति वाला लिंग अग्नि तम रूप है, ब्रह्मा रज रूप है, विष्णु सत्त्व स्वरूप है । असली मूर्ति एक ही है । इसी एक मूर्ति की देव लोग तथा पण्डित लोग पूजा करते हैं । सब लक्षणों से संयुक्त दर्शनीय अंगूठे के समान लिंग की पूजा करे ।

भिन्न-भिन्न युगों में ईश्वर या महादेव के चक्री आदि रूपों का वर्णन करके पता नहीं लगता यह लिंग गोलमटोल रूप किस युग का चिह्न माना है। कलियुग में धर्म केतु रूप माना है। पिण्डिका वाले लिंग का वर्णन यहां अप्रासंगिक मालूम होता है। पाठकों के सामने इन विवरणों से यह बात स्पष्ट हो गई होगी कि लिंग पुराण के प्रसंगापतित प्रकरण से कोई सम्बन्ध नहीं। आलंकारिक प्रणाली से प्रकृत पुरुष तथा जीवात्मा का लिंग पुराण में वर्णन किया गया है। इस अवस्था में लिंग पुराण को धर्मग्रन्थ समझना ठीक नहीं है। मनुष्य जीवन की दृष्टि से भी स्त्री पुरुष के पारस्परिक सम्बन्ध का वर्णन इस में किया गया है। उपरिलिखित उद्धरणों के साथ-साथ लिंग पुराण का निम्न लिखित श्लोक हमें सदा अपने सामने रखना चाहिये—

नन्दीः—वक्ष्यामि वो हितं पुण्यं भक्तानां मुनि पुंगवाः
स्त्रीलिंगमखिलं देवी, प्रकृतिर्मम देहजा।
पुंल्लिगपुरुषो विप्रा मम देहसमुद्भवः।
उभाभ्यामेव वै सृष्टिर्मम विप्रा न संशयः॥

नन्दी—मुनिगण ! मैं आप लोगों के हित की बात कहता हूं। मेरे देह से पैदा होने वाली स्त्री लिंग को धारण करने वाली जितनी प्रकृत सृष्टि है वह सब देवी व शिवा कहलाती है। मेरे देह से उत्पन्न जितने भी पुंल्लिग (पुरुष योनि) को धारण करने वाले हैं वह सब पुरुष कहलाते हैं। यह संसार सृष्टि इन स्त्रीलिंग तथा पुंल्लिग के प्रतिनिधि रूप शिवा तथा शिव से ही होती है।

संसार में हम देखते हैं कि सारी सृष्टि स्त्रीलिंग और पुंल्लिग के भेद से विभक्त की जाती है। नन्दी कहते हैं कि यह सब कुछ परमात्मा का विस्तार है। स्त्री लिंग और पुंल्लिग के अन्तर्गत हैं। यह दोनों परम लिंग के हिस्से हैं। इनसे सृष्टि पैदा होती हैं। इस प्रकार लिंग पुराण का मुख्य विषय तथा भाव पाठकों के सामने स्पष्ट हो गया है। हमें लिंग पुराण का अध्ययन इसी दृष्टि से करना चाहिये। लिंग पिण्डिकादि के वर्णन अप्रासंगिक मालूम होते हैं।

लिंग पुराण में वैदिक (आर्यसमाज सम्मत) सिद्धान्तों का समर्थन

ऋषि दयानन्द ने मुक्ति के समय तथा मुक्ति से निश्चित समय के बाद जीवात्मा के कर्मक्षेत्र में आने की जो बात लिखी है उसका समर्थन इन श्लोकों से होता है—

परान्ते वै विकाराणि विकारे यान्ति विश्वतः ॥५०॥
विकारस्य शिवस्याज्ञा वशेनैव तु संहृतिः।

संहृते तु विकारे च, प्रधाने चात्मनि स्थिते ।।५१।।
साधर्म्येणावतिष्ठैते प्रधानपुरुषावुभौ ।
गुणानां चैव वैषम्ये विप्राः सृष्टिरिति स्मृता ।।५२।।
साम्ये लयो गुणानां तु तयोः हेतु र्महेश्वरः ।
लीलया देवदेवेन सर्गास्त्वीदृग्विधाः कृताः ।।५३।।

लिंग पुराण पूर्व भाग अध्याय ४ ।।

(१) "काल या समय की परान्तावस्था का अनुभव वही आत्मा करते हैं जो कि प्राकृतिक विकारों को नष्ट करके, गुणों को प्रकृति में लीन कराकर, आत्म स्थित होकर, प्रकृति को भोग्य बुद्धि से न अपना कर, साधारण या समानता की दृष्टि से अपनाते हैं। इस परान्तकाल की अवधि के बाद परमात्मा की प्रेरणा तथा इच्छा से वह आत्मा फिर विषम गुणों के साथ सृष्टि में आते हैं। परमात्मा इस प्रकार के अनेक सर्ग सृजता है।

(२) सृष्टि के प्रारम्भ में मनुष्य किस अवस्था में उत्पन्न हुए ? आचार्य दयानन्द लिखते हैं कि युवावस्था में पैदा हुए, लिंग पुराण का श्लोक इस प्रकार है :—

स्रष्टुं च भगवाञ्चक्रे मतिं मतिमतां वर ।
मुख्यं च तैर्यग्योन्यं च दैविकं मानुषं तथा ।।
विभुश्चानुगृहं तत्र कौमारकमदीनधीः ।
पुरस्तादसृजद्देवः सनंदं सनकं तथा ।।

शिवलिंग ३८ अ० पूर्वभाग ।११।

टीकाकार "कौमारकं" शब्द का अर्थ "कुमारसर्गम्" लिखते हैं। सत्यार्थ-प्रकाश में भी यही लिखा है कि सृष्टि के प्रारम्भ में जो मनुष्यसृष्टि थी वह युवा-वस्था वाले पुरुषों की थी क्योंकि अति बाल और अति वृद्ध उस समय निर्वाह ही नहीं कर सकते थे।

(३) वर्णव्यवस्था :—

मर्यादायाः प्रतिष्ठार्थं ज्ञात्वा तदखिलं विभुः ।
ससर्ज क्षत्रियांस्त्रातुं क्षतात्केवलसंभवः ।।
वर्णाश्रम प्रतिष्ठाञ्च चकार स्वेन तेजसा ।
वृत्तेन वृत्तिना वृत्तं विश्वात्मा निर्ममे स्वयम् ।।
यज्ञप्रवर्तनं चैव त्रेतायामभवत् क्रमात् ।
पशुयज्ञं न सेवन्ते केचित्तत्रापि सुव्रताः ।।

अध्याय ५६ लिं० पु० । ४६—५०—५१ ।

ब्रह्मा ने समाज की मर्यादा को स्थिर रखने के लिये, समाज को आपत्तियों

से बचाने के लिये क्षत्रियों को उत्पन्न किया, और साथ ही वर्णाश्रम प्रतिष्ठा भी की। वर्णाश्रम व्यवस्था का प्रेरक भाव या विभाजक निर्णायक तत्व वृत्ति और वृत्त को स्वीकार किया गया है। वृत्ति का अर्थ है जीविकोपार्जन के लिये स्वीकार किया गया धंधा। वृत्त का मतलव आचार या सदाचार से है। ब्रह्मा ने वृत्त और वृत्ति को आधार मान कर ही वर्णाश्रम व्यवस्था की संस्थापना की। लिंग पुराण के अध्ययन से यह भी पता लगता है कि वर्णव्यवस्था का प्रारम्भ त्रेतायुग से हुआ। इस से पूर्व, कृतयुग में लोग स्वयं नियमित आचार स्वभाव के होने से मर्यादा में रहते थे। उस समय सब मनुष्य मनुष्यत्व के भाव से प्रकृति के उदार दान के कारण आपस में लड़ते नहीं थे। जब आपस में ईर्ष्या द्वेष के भाव पैदा हुए, तभी क्षत्रिय का निर्माण किया गया। वर्णाश्रम व्यवस्था विकास के इस सिद्धान्त को मानने का मतलब यह है कि वर्णव्यवस्था ईश्वर कृत विभाग नहीं है। मनुष्य तथा समाज में वृत्त तथा वृत्ति के अनुसार इसका निर्माण किया जाता है। बेदों के पुरुष सूक्त से भी यही मालूम होता है कि यह वर्ण विभाग आवश्यकता पड़ने पर समाज की व्यवस्था के लिये कल्पित किया जाता है। जो पौराणिक भाई या अनुदार विचारक यह मानते हैं कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आदि भेद गौ अश्व आदि की भांति ईश्वर कृत हैं, उनसे हमारा एक प्रश्न है। लिंग पुराण के इस प्रकरण में तथा अन्यत्र जहां सृष्टि रचना का विवरण किया गया है वहां पशु सृष्टि का, गौ अश्व बडवा आदि की उत्पत्ति का वर्णन करते हुए यह क्यों नहीं लिखा कि फिर ईश्वर ने ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र भी बनाए? पुराणों में तो पशु सृष्टि के वर्णन के बाद मनुष्य सृष्टि का वर्णन मिलता है। इस विचार से यदि पुराणों का अध्ययन करें तो पुराणों के सृष्टि वर्णन वाले सब प्रकरण आर्यसमाज द्वारा प्रतिपादित वर्णव्यवस्था-सिद्धान्त के समर्थक हैं।

(४) आर्य शब्द का प्रयोग—आर्य समाज की सम्मति में मनुष्य समाज को अनार्य और आर्य दो विभागों में बांटना चाहिए। इसी सिद्धान्त के अनुसार आर्य-समाज, भारतीयों तथा विशेषतः हिन्दुओं को इस बात की प्रेरणा करता है कि वह अपने आपको तथा भले मनुष्यों को आर्य कहा करें। इस सम्बन्ध में भी लिंग पुराण आर्यसमाज के मन्तव्यों का समर्थक है।

(१) सारे लिङ्ग पुराण में "हिन्दु" शब्द का कहीं भी पाठ नहीं है।

(२) इसके विपरीत निम्नलिखित दो स्थानों पर आए "आर्य" शब्द की तरफ हम पाठकों का ध्यान आकृष्ट करना चाहते हैं।

ब्रह्मा ने दस मानस पुत्रों को पैदा किया। ईश्वर या शिव ने उनको पञ्चा-क्षर मन्त्र का मुञ्जपर्वत पर उपदेश दिया। उनका निर्देश करते हुए शिव जी पार्वती को कहते हैं—

न्यासं षडङ्गं दिग्वन्धं विनियोगमशेषतः ।
प्रोक्तवानहमार्याणां लोकानां हितकाम्यया ।।

अध्याय ८५ । श्लो० २४।। लिं० पूर्वभाग,

ज्येष्ठः सर्वेश्वरः सौम्यो महा विष्णु तनुः स्वयम् ।
आर्यः सेनापतिः साक्षाद्गहनो मखमर्दनः ।।

अ, ८२ । ९३ श्लो० लि० पूर्व ।।

प्रथम उद्धरण में ब्रह्मा ने सृष्टि का विस्तार करने के लिए जिन दस पुत्रों को पैदा किया उन दस पुत्रों को "आर्याणां" शब्द से स्मरण किया गया है। पौराणिक कथा विन्यास के अनुसार इन १० पुत्रों से ही मनुष्य सृष्टि का प्रारम्भ हुआ है। इस दशा में मनुष्यों को आर्य क्यों न कहा जाय ? मुञ्ज पर्वत पर तपस्या करने वाले दस पुत्रों को आर्य कहा गया है। ऐतिहासिकों की दृष्टि में मुञ्ज पर्वत का अभिप्राय क्या है इसके विषय में हम कुछ न कह कर, पौराणिक प्रचलित विचार सरणि के अनुसार इसको भारतवर्ष में ही मानते हैं। इस दशा में भारतवर्ष में रहने वालों को अपने पूर्वजों के अनुसार अपने लिए आर्य शब्द का प्रयोग करने में संकोच न करना चाहिए।

दूसरे उद्धरण में शिव पार्वती के पुत्र शैलाद गणेश को आर्य कहा गया है। हिन्दू धर्म का कोई सम्प्रदाय होगा जो गणेश की पूजा न करता हो। इस इष्ट देव के पुत्र विघ्नों को हटाने वाले के लिए लिङ्ग पुराण में आर्य शब्द का प्रयोग किया गया है—इस लिए गणेश के पुजारियों को अपने लिए आर्य शब्द का प्रयोग करने में संकोच नहीं करना चाहिए। जो अपने आपको आर्य कहता है उसके सामने यह भाव होता है कि वह सब मनुष्यों को बराबर समझेगा। (आर्यः यः स्वमिव परमपि पश्यति। कौटिल्य अर्थ शास्त्र.) इस शब्द के कीर्तन से उच्च विचार तथा ज्वलन्त इतिहास, मानसिक चक्षुओं के सामने चित्रित हो जाते हैं।

(५) सांख्यवादी निरीश्वरवादी नहीं है :—ऋषि दयानन्द तथा आर्य समाज सांख्यवादियों को या सांख्य दर्शन को निरीश्वरवादी नहीं मानते।

भवानीशोऽनादिमाँस्त्वं वै सर्वलोकानां त्वं ब्रह्मकर्तादिसर्गः सांख्याः प्रकृतेः परमं त्वां विदित्वा क्षीण ध्यानास्त्वाममृत्युं विशन्ति ।।

लि० २१ अध्याय ८५ श्लोक

हे शिव ! सांख्यवादी भी आपके प्रकृति से परे तथा सूक्ष्म स्वरूप को जान कर अमृत्यु लोक अर्थात अमृत लोक में प्रवेश करते हैं।

(६) मूर्तिपूजा का स्वार्थ पूर्ण उद्देश्य :—ऋषि दयानन्द ने अनेक वार यह भाव प्रकट किए हैं कि मूर्तिपूजा का प्रचार पुजारी लोग पेटपूजा के लिए करते हैं।

लिंग पुराण ७७ अध्याय पूर्व भाग २६ श्लोक इस विषय में प्रमाण हैं—

वृत्यर्थं वा प्रकुर्वीत नरः कर्म शिवालये।
यः स याति न संदेहः स्वर्गलोकं सवान्धवः ॥

जीविका सिद्ध करने के उद्देश्य से भी मनुष्य शिवालय तथा मन्दिर में लिंग पूजा का कार्य करे। यही प्रवृत्ति धीरे-धीरे मूर्ति पूजा को स्वार्थियों का गढ़ बना देती है। ईश्वर पूजा जैसे पवित्र कार्य को मनुष्य की सांसारिक वासनाओं को पूर्ण करने वाले आडम्बरों से कलुषित नहीं करना चाहिए।

मूर्ख और अविद्वान् ही मूर्तिपूजा करते हैं।

लिङ्गं तु द्विविधं प्राहुः वाह्यमाभ्यन्तरं द्विजाः।
वाह्यं स्थूलं मुनिश्रेष्ठाः सूक्ष्ममाभ्यन्तरं द्विजाः ॥१६॥
कर्मयज्ञ रताः स्थूला स्थूल लिङ्गार्चने रताः।
असतां भावनार्थाय नान्यथा स्थूल विग्रहः ॥२०॥
आध्यात्मिकं च यल्लिङ्गं प्रत्यक्षं यस्वनो भवेत्।
असौ मूढ़ो वहिः सर्वं कल्पयित्वैव नान्यथा ॥२१॥
ज्ञानिनां सूक्ष्मममलं भवेत्प्रत्यक्षमव्ययम्।
यथा स्थूलमयुक्तानां मृत्काष्ठाद्यैः प्रकल्पितम् ॥२२॥

७५ अध्याय। १६—२२ श्लो०।

वाह्य और आभ्यन्तर भेद से लिंग दो प्रकार का है। वाह्य लिंग स्थूल रूप होता है। आभ्यन्तर लिंग सूक्ष्म रूप होता है। कर्म तथा लिंग पूजा में लगे हुए लोग स्थूल लिंग के उपासक हैं। आध्यात्मिक लिंग आभ्यन्तर लिंग है।

ज्ञानी लोग सूक्ष्म आभ्यन्तर लिंग की उपासना करते हैं जिनका मन कहीं किसी वात पर (युक्त) लग नहीं सकता—ऐसे लोग मट्टी लकड़ी आदि के बने हुए लिंग की पूजा करते हैं।

वाल्यात्तु लोष्ठेन शिवं च कृत्वा मृदापि वापांसुभिरादिदेवम्। गृहं च तादृग्विध भस्महां भोः संपूज्य रुद्रत्वमवाप्नुवन्ति ॥ २७ अ० ५ श्लो०

यदि कोई खेल कूद में मिट्टी की पूजा करे तो वह भी रुद्रत्व की गति को पाता है।

वाह्य आभ्यान्तर अथवा स्थूल भेद से लिंग दो प्रकार का है। ज्ञानी लोग सूक्ष्म अव्यय की पूजा करते हैं। अयुक्त अज्ञानी लोग रेत और मिट्टी के बने हुए शिव की पूजा करते है। केवल यही नहीं। यह भी लिखा है कि खेल कद में,

मिट्टी या रेत के बने शिव की पूजा से भी रुद्रलोक मिल जाता है। आयसमाज का कथन यह है कि अज्ञान तथा अविद्या का नाश करना चाहिये। इस लिए अविद्या तथा अज्ञान को स्थिर रूप देने वाली मूर्ति पूजा का भी अन्त करना चाहिए। मिट्टी के बने लिंगों द्वारा उन्हें मुक्ति दिलाने की अपेक्षा विद्या का प्रचार करके उन्हें अयुक्त तथा अज्ञानी लोगों द्वारा चलाई गई मूर्ति पूजा को छोड़ देना चाहिए। आर्य समाज की इस सचाई का समर्थन शिक्षित देश कर रहे हैं। जिन-जिन देशों में विद्या का प्रचार हो रहा है वहां तो मूर्ति पूजा की प्रथा स्वयं ही नष्ट हो रही है। क्योंकि विद्यावाला आदमी स्थूल लिंग की पूजा द्वारा अपने आत्मा को सन्तुष्ट नहीं कर सकता।

मृतक श्राद्ध पौर जीवित श्राद्ध :—आर्यसमाज जीवित श्राद्ध अथवा जीवित पुरुषों की श्रद्धा पूर्वक सेवा करने का समर्थक है। मृतक श्राद्ध का सिद्धान्त अवैदिक है। वर्तमान समय में उपलभ्यमान लिंग पुराण के पूर्व भाग में मृतक श्राद्ध व जीवच्छ्राद्ध किसी का भी नाम नहीं आता। लिंग पुराण के उत्तर भाग में इस विषय में लिखित श्लोक उपलब्ध होते हैं।

देवदेव जगन्नाथ नमस्ते भुवनेश्वर।
जीवच्छ्राद्धं महादेव प्रसादेन विनिर्मितम्॥

लिं० ३।२७।७ श्लोक।

विशेष एव कथितं अशेषः श्राद्धचोदितः।
मृते कुर्वन्ति कुर्याद्वा जीवन्मुक्तो यतः स्वयम्।
नित्य नैमित्तिकादीनि कुर्यात् वा संत्यजेन्नु वा।
वांधवेपि मृते तस्य शौचाशौचं न विद्यते॥

लि० उत्तर। ४५ अ० ८४। ८५ श्लोक।

इस प्रकरण को समाप्त कर ऋषि कहते हैं :—

ऋषय ऊचुः—

जीवच्छ्राद्ध विधिः, प्रोक्तस्त्वया सूत महामते।
मूर्खाणामपि मोक्षार्थमस्माकं रोमहर्षण॥

४६ अ० १ उ० लिं० अ०

इन दोनों उद्धरणों में स्पष्टतया न तो मृतक श्राद्ध का मण्डन है और नाहीं खण्डन। हां यह स्पष्ट है कि दोनों उद्धरणों में जीवच्छ्राद्ध पर विशेष बल दिया गया है।

(८) लिंग पुराण में वेद का महत्त्वः—

वेद शब्देभ्य एवादौ निर्ममे स महेश्वरः ।
ऋषीणां नामधेयानि याश्च वेदेषु वृत्तयः ।।

७ उ० लिं० ५८ श्लोक

लिंग पुराण में अनेक स्थलों पर वेदों का माहात्म्य तथा ईश्वरीय ज्ञान होना स्वीकार किया गया है। इस श्लोक में यह बताया गया है कि वेदों से ही लेकर ऋषियों के नाम रखे गये हैं। इसलिए उन नामों से इतिहास का ढूंढ़ना ठीक नहीं है।

इन संक्षिप्त विवरणों के अतिरिक्त सृष्टि उत्पत्ति का विवरण वही पाया जाता है जो कि उपनिषदों तथा वेदों में है। आलंकारिक अर्थवाद के ढंग से हुए वर्णन को कहानी का रूप दे दिया है। सब वर्णों अ. क. ख. आदि की उत्पत्ति भी परमात्मा से ही मानी गई है।

अनेक स्थलों पर, वैदिक शब्दों की व्याख्या भी आर्यसमाज के मन्तव्य के अनुकूल ही उपलब्ध होती है। गायत्री मन्त्र तथा "त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टि वर्धनम्" की व्याख्या आर्यसमाज के मत के अनुकूल की गई है। इस प्रकरण को समाप्त कर हम लिंग पुराण में प्रचलित पौराणिक सनातन धर्म के विरुद्ध जो बातें लिखी हुई हैं उनका विवरण पाठकों के सामने रखेंगे।

वर्तमान समय में प्रचलित पौराणिक सनातन धर्म के सिद्धान्त निश्चित नहीं हैं। सनातन धर्मान्तर्गत सम्प्रदाय अपनी-अपनी अलग रट लगाते हैं। अतः प्रस्तुत विषय के सम्बन्ध में विशेष रूप से विचार करना मुश्किल है। फिर भी प्रचलित पौराणिक धर्म की कुछएक बातों का वर्णन यहां किया जाता है। प्रचलित पौराणिक मत का अधिकांश में खण्डन लिङ्गपुराण की आलङ्कारिक व्याख्या तथा लिंगपुराण के विचारणीय परस्पर विरोध सम्बन्धी विषय के आलोचन से स्वयं ही हो जाता है।

(क) शंकरः पुरुषाः सर्वे स्त्रियाः सर्वा महेश्वरी ।।१८।।
पुल्लिङ्ग शब्द वाच्या ये ते च रुद्रा प्रकीर्तिताः ।
स्त्रीलिङ्ग शब्द वाच्या या सर्वा गौर्या विभूतयः ।।

लिंग पुराण उत्तरार्ध ११ । श्लो० १८ । ११

जितने पुरुष हैं वह सब ही शङ्कर हैं। जितनी स्त्रियां हैं वह सब शिवा या पार्वती कहलाती हैं। स्त्रीलिंग शब्द से कहे जानी वाली सब सृष्टि "गौरी" पार्वती की विभूति है।

लिंग पु. अ. ६३ में १० श्लोक से लेकर २० श्लोक तक शैलज रत्नज दधिमय भीरूमय दारुज आदि अनेक प्रकार के लिंगों की पूजा का विधान है, परन्तु वर्तमान समय में सिवाय मृण्मय या प्रस्तरमय लिंग की पूजा के और किसी प्रकार

के लिंग की पूजा का प्रचार नहीं दिखाई देता। ऐसा मालूम होता है कि देश की गरीबी या लोगों की धन लोलुपता या अर्कमण्यता से डरने की प्रवृत्ति ने भी शिव-लिङ्ग को इस दशा तक पहुंचाया है। इस प्रकार के परिवर्तनशील पौराणिक मत से क्या लाभ ! इष्ट देव को भी भक्तों की कमजोरी के कारण हीन अवस्था को प्राप्त होना पड़ा।

(ख) वर्तमान समय में, भस्म शब्द का अर्थ केवल राख या धूनी रमाना समझा जाता है परन्तु लिङ्ग पुराण में भस्म का अर्थ वीर्य किया है।

अग्निकार्यं च यः करिष्यति त्रिया पुषम्।
भस्मना मम वीर्येण मुच्यते सर्व किल्विषैः ।।
भक्षणात्सर्वपापानामत्येति परिकीर्तितम्।
तस्माद्भस्म महाभागा मद्वीर्यमिति चोच्यते।
स्ववीर्यं वपुषा चैव धारयामीति वै स्थितिः ।।

३४ अ० लिंग पु० पूर्वभाग। ६-८ श्लोक

✻जो आदमी मेरे वीर्य रूप भस्म से जीवन निर्वाह करता है वह सब पापों से निवृत्त हो जाता है। क्योंकि वीर्य सब पापों को दग्ध करता है जला देता है इस लिये इसे भस्म कहते हैं। मैं अपने शरीर को वीर्य द्वारा ही धारण करता हूं।

(ग) दैत्यों के त्रिपुर का वर्णन किया गया है।

वेदाध्ययन शालाभिः विविधाभिः समन्ततः।
अधृष्टं मनसाप्य चैर्भस्मस्यैव च मायया ।।

७१ अ०।३१ श्लो०

दैत्यों के त्रिपुर में भी वेद पाठशालाएं थीं। यह दैत्य कम से कम देवातिरिक्त आर्यातिरिक्त पुरुष थे—जब इनको वेद पढ़ने का अधिकार था तो आजकल आर्य जाति के अङ्गभूत शूद्रों या स्त्रियों को वेद पढ़ने का अधिकार न देना अयुक्त है। इस श्लोक का भाव यह है कि वेद की पाठशालाओं के कारण त्रिपुर पर कोई आक्रमण नहीं कर सका। इसी प्रकार आज जिन्हें सनातनी भाई उच्च अधिकार नहीं देते उन्हें भी चाहिए कि अपने-अपने मुहल्लों में वेद पाठाशालायें खुलवाएं। फिर किसी की क्या शक्ति कि उन पर उनके धार्मिक अधिकारों पर हाथ उठा सकें।

(घ) आजकल पौराणिक लोग शंकर और शिव या पार्वती शब्द का प्रयोग केवल मात्र पत्थर के शंकर या उनके पास बैठी पार्वती से करते हैं। परन्तु इस प्रकरण के प्रथम श्लोकों में साफ स्पष्ट लिखा है कि पुरुष मात्र शिव हैं और स्त्रीमात्र शिवा हैं। इस दृष्टि से मनुष्य मात्र या प्राणिमात्र की पूजा करनी सनातन धर्म है। यदि इस दृष्टि से पौराणिक भाई व्यवहार करें तो संसार में कोई भी मनुष्य या प्राणी ऐसा न रहे जो उनके धर्म में न आवे।

लिंग पुराण का संस्कृत साहित्य पर प्रभाव

संस्कृत साहित्य पर किसी एक पुराण की दन्तकथाओं का प्रभाव नहीं है। सब पुराणों का प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से संस्कृत साहित्य पर प्रभाव दिखाई देता है। इसलिए किसी एक पुराण की दन्तकथाओं तथा काल्पनिक अर्थवादों का निश्चित तथा स्पष्ट रूप में संस्कृत साहित्य के काव्यग्रन्थों पर क्या प्रभाव पड़ा है—इसका विवेचन करना असम्भव नहीं तो कठिन जरूरी है। एक दन्तकथा अनेक रूपों में भिन्न-भिन्न पुराणों में लिखी गई है। इसलिए कौन सी कथा मूल रूप में किस पुराण विशेष से सम्बद्ध है, यह निश्चित करना कठिन है। लिंग पुराण के सम्बन्ध में यह दिक्कत और भी अधिक जटिल हो जाती है। क्योंकि शिव पुराण तथा लिंग पुराण का विषय तथा उद्देश्य एक ही है।

पुराण का संस्कृत साहित्य पर जो प्रभाव पड़ा है उस के आलोचन की आवश्यकता इसलिए है कि साहित्य किसी जाति व राष्ट्र का लिखित चित्र होता है। शिव तथा लिंग की पूजा करने वाले राजाओं या समाजों के इतिहास के निरीक्षण में जो साहित्य पैदा हुआ है उस पर शिव पुराण तथा लिंग पुराण की धार्मिक कल्पनाओं का प्रतिबिम्ब पड़ना अनिवार्य है। इस तरफ ध्यान देने की आवश्यकता इस लिए भी है कि भारतीय इतिहास में शिव और लिंग की पूजा करने वाले व्यक्तियों ने अपने समय में बड़े-बड़े वीरतापूर्ण कार्य किए हैं।

चित्तौड़ के महाराणा एकलिंग के पुजारी थे। हर हर का नारा लगाकर इन्होंने कई बार विदेशियों तथा अत्याचारियों के छक्के छुड़ाए।

आज भी उदयपुर से थोड़ी दूरी पर अवस्थित एकलिंग जी के विशाल मंदिर को देखकर, उसके चारों तरफ की पर्वत माला के उच्च शिखरों पर कहीं-कहीं मंदिरों के चिन्ह देखकर, वह भावना हृदय में पैदा हुए बिना नहीं रहती कि यह मंदिर केवल धर्ममंदिर ही नहीं थे-यह युद्धमंदिर भी थे।

पत्थर के गोल-गोल लिंग केवल पूजा के साधन नहीं थे अपितु मर्कटी यन्त्र द्वारा दुश्मनों पर फेंके जाने वाले गोले थे। इसी प्रकार, आज भारतवर्ष में इसी एकलिंग पशुपति का नाम लेकर, राज्य करने वाले नैपाली लोग स्वतन्त्र हैं। भारतीय इतिहास के वीर नायकों से कवियों ने किसी न किसी प्रकार से शिव की पूजा करादी है। महाराष्ट्र के भूषण शिवाजी महाराज ने भवानी तलवार की मूर्ति में भवानी की धारणा करके, अपने समय में भारतीय साहित्य में शिव तथा लिंग पुराण की कथाओं का काफी प्रचार किया था। केवल यही नहीं; भारतवर्ष में अंग्रेजों के आने पर, बिखरी सेनाओं के सिपाहियों ने ठगों का बाना पहनकर, हिन्दू-मुसलमान सबने मिलकर, भवानी की पूजा करने में संकोच नहीं किया था। इन

घटनाओं के द्वारा शिवपुराण तथा लिंग पुराण की दन्तकथाओं का आम जनता पर काफी प्रभाव पड़ा। कालिदास के कुमार सम्भव में लिंग पुराण की कथा की झलक दिखाई देती है।

लिंग पुराण के पंचम अध्याय तथा अन्य स्थानों पर जो सृष्टि-वणन किए गए हैं उनमें धृति श्रद्धा आदि गुणों को देवियों का रूप दिया गया है। प्रबोध-चन्द्रोदय जैसे नाटकों में पुराणों की इस कल्पना के आधार पर, नाटकों द्वारा इन गुणों का प्रचार करने का यत्न किया गया है। ऐसा मालूम होता है कि इन कथाओं के रचयिताओं ने कथा तथा काव्य के ढंग से लोगों को ज्ञान उपदेश देने की परिपाटी चलानी चाही थी परन्तु पीछे से लोग अलंकार के तत्व को भूलकर उन्हें असली देवी-देवता समझने लगे। कुमारसम्भव की कथा तथा वृत्तान्त में स्थान-स्थान पर प्रकृति वर्णन तथा मनुष्य-स्वभाव का वर्णन आलंकारिक ढंग से किया हुआ दिखाई देता है परन्तु शब्दों को रूढ़ि मानने वाले, स्थूल बुद्धि वाले लोगों ने अर्थ का अनर्थ कर दिया है।

मध्यकाल में अशिक्षित अदूरदर्शी लोगों ने पुराणों की आलङ्कारिक तथा यौगिक व्याख्या को भुला कर, संस्कृत साहित्य को जीवन-हीन कर, भारतीय राष्ट्र को नुकसान पहुँचाया था। अब आवश्यकता इस बात की है कि इन आलङ्कारिक भावों का फिर से प्रचार किया जाय। तभी सच्चे अर्थों में मूर्तिपूजा का खण्डन हो सकेगा। रूढ़ि पूजा और मूर्ति पूजा में कोई भेद नहीं हैं।

लिंग पुराण तथा अन्य पुराणों ने, संस्कृत साहित्य में तथा आम जनता में बहु देवतावाद का प्रचार किया। यह बुराई तभी दूर हो सकती है जब कि हम जनता के सामने इस बात को स्पष्ट कर दें कि पुराण तथा लिंगपुराण यह धर्म ग्रन्थ नहीं हैं किन्तु यह लौकिक साहित्य के सामान्य ग्रन्थ हैं। यदि इस प्रकार इनका अध्ययन किया जायेगा तो भारतवर्ष के वर्तमान साहित्य पर इनका उत्तम प्रभाव पड़ेगा। इस उत्तम प्रभाव को पैदा करने के लिए, दन्तकथाओं को आलङ्कारिक व्याख्या तथा पुराणों को धर्मग्रन्थ न मान कर, उन्हें लौकिक साहित्य का अंग मानना ही एकमात्र उपाय है। आशा है भारतीय साहित्य का निर्माण करने वाले इसी दृष्टि से साहित्य का निर्माण करेंगे।

—०—

लिंग पुराण की रचना में दोष

लिंग पुराण की समालोचना को पूर्ण करने के लिये आवश्यक है कि लिंग पुराण के दोषों को भी पाठकों के सामने उपस्थित किया जाय। लिंग पुराण में कई प्रकार के दोष विद्यमान हैं।

लिंग पुराण से अध्ययन से मालूम होता है कि ग्रन्थ रचना के नियमों की दृष्टि से इसमें कई दोष विद्यमान हैं। हम क्रमशः इन दोषों पर विचार करेंगे।

(१) ग्रन्थ रचना की दृष्टि से अप्रासंगिक बातों का वर्णन। (२) परस्पर विरोध तथा अनावश्यक पुनरावृत्ति (३) आचार की दृष्टि से अर्थवादों तथा कथाओं के दोष।

(१) ग्रन्थ रचना की दृष्टि से अप्रासंगिक बातों का वर्णन

लिंग पुराण के पूर्वभाग और उत्तर भाग में परस्पर सम्बन्ध नहीं दिखाई देता। लिंग पुराण के पूर्व भाग के अन्तिम अध्याय के अन्तिम श्लोक को छोड़ कर शेष सारा अध्याय शिव तथा रुद्र के माहात्म्य का समर्थक है। अन्तिम श्लोक में पता नहीं, भक्तों को विष्णुलोक में क्यों पहुँचाया गया है। लिंग पुराण का उद्देश्य भक्तों को रुद्रलोक में पहुँचाना है। ऐसा मालूम होता है कि अन्तिम श्लोक किसी वैष्णव ने अपनी टांग ऊँची रखने के लिए लिख मारा है। लिंगपुराण के पूर्वभाग में शिव, रुद्रलोक, पार्वती, सृष्टिवर्णन, लिंगपूजा आदि सब विषयों का विवरण दिया गया है। इस पूर्व भाग के पढ़ने के बाद ऐसा मालूम होता है कि अब लिंग पुराण अपने प्रतिपाद्य विषय की दृष्टि से समाप्त हो चुका है। सब प्रकार के माहात्म्य, मन्त्रपाठों का फल-निर्देश किया जा चुका है। इस पूर्वभाग में केवल मात्र, लिंगपुराण की कथा प्रारम्भ करने वाले, सूत, नैमिषारण्य के ऋषियों तथा नारद को अन्तिम नमस्कार नहीं किया गया। बीच में ही लिंगपुराण के अन्तिम श्लोक में भक्त को विष्णु लोक में भेजकर उत्तर भाग का प्रारम्भ विष्णु कृष्ण के माहात्म्य से किया गया है। उत्तर भाग के प्रथम भाग में ज्यादा जोर वैष्णव भक्ति तथा विष्णु अवतार के माहात्म्य पर दिया गया है। विष्णु पुराण में यह वर्णन संगत मालूम हो सकता है, परन्तु यहां लिंग पुराण में जहां बीच में अनेक वार, ब्रह्मा-विष्णु की लड़ाई कराकर, उन्हें रुद्र के सामने नीचा दिखाया है, इस प्रकार विष्णु की स्तुति अप्रासंगिक ही नहीं किन्तु लेखक के दिमाग की विचित्र दशा की परिचायक हैं। हमारा अनुमान है कि यदि लिंग पुराण के शिवजी को. या उनके भक्त को यह विष्णु माहात्म्य का स्तोत्र सुनाया जाय तो वह अवश्य ही किसी न किसी ढंग से नई कथाएँ घड़कर, विष्णु महाराज को नीचा दिखाने का यत्न करेंगे।

(२) परस्पर विरोध आदि

लिंगपुराण में जितनी कथाएँ आई हैं, उनका प्रारम्भ सूत और श्रोता ऋषियों ने शिव माहात्म्य का प्रदर्शन करने के लिए किया है। अतः उनमें परस्पर विरोध दिखाई नहीं देता। परन्तु फिर भी जहाँ महादेव से भव, विष्णु और ब्रह्मा की

उत्पत्ति का वर्णन है वहाँ पढ़ने वाले के हृदय में यह प्रश्न पैदा होता है कि विष्णु और ब्रह्मा की भाँति भव की भी अलग स्थिति होगी। परन्तु जब भव का स्वरूप-वर्णन पढ़ते हैं तो महादेव और भव में किसी प्रकार का भेद भाव दिखाई नहीं देता।

ग्रन्थ-रचना की दृष्टि से एक ही ग्रन्थ में वार-वार एक ही बात का नाम मात्र के परिवर्तन के साथ पुनः पाठ करना भी ठीक नहीं है। लिंग पुराण में यह दोष अनेक स्थलों पर पाया जाता है। सृष्टि वर्णन, शिव माहात्म्य प्रदर्शन, कम से कम ६ बार बिना किसीं विशेष भेद के दुहराया गया है। इसी प्रकार शिव स्तोत्रों तथा शिव माहात्म्यों का वार-वार दुहराना भी ग्रन्थ-रचना शास्त्र की दृष्टि से अनुचित है। इस दोष के कारण पाठक तथा लेखक का समय खराब होता है। इस प्रकार के पुनरावृत्ति के दोष अनेक स्थलों पर पाठकों को विना किसी विशेष यत्न के दिखाई देंगे। तीसरा स्थल भी पाठकों के सामने रख देना अप्रासंगिक न होगा। शिव के सामने विष्णु और ब्रह्मा की हीन स्थिति का दिग्दर्शन एक वार कराना पर्याप्त था, परन्तु लिंग पुराण के संग्रहकर्ता या लेखक इससे सन्तुष्ट न होकर, जहाँ कहीं अवसर देखते हैं, नई कथा तथा नया सिलसिला छेड़ कर शिव के सामने ब्रह्मा और विष्णु की स्थिति को कम करने में नहीं चूकते। त्रिदेवतावाद की दृष्टि से यह भी आवश्यक था कि लेखक महोदय कहीं तीनों शक्तियों का समन्वय दिखाते। इसके लिये थोड़ी बहुत कोशिश की गई है, परन्तु आवश्यकता इस बात की थी कि इस समन्वयवाद के लिए विशेष जगह दी जाती, परन्तु ऐसा नहीं किया गया।

लिंग पुराण के कुछ स्थलों पर, वेद संहिताओं के मन्त्रों का पाठ किया गया है। परन्तु इन मन्त्रों की प्रतीक आदि नहीं लिखी गई। यह नहीं बताया गया कि कौन सा मन्त्र किस वेद से लिया गया है। इसी प्रकार पञ्चाक्षर मंत्रोपदेश का माहात्म्य तो गा दिया है, परन्तु उसका स्वरूप निर्देश स्पष्ट रूप में नहीं किया गया। ग्रन्थरचना की दृष्टि से लिंग पुराण में यह भी बड़ी भारी त्रुटि है कि इसमें किसी एक ग्रन्थ-लेखक का व्यक्तित्व नहीं झलकता। निःसन्देह कथा श्रावक सूत है, परन्तु अनेक स्थलों पर ऐसा मालूम होता है कि लेखक बदल रहा है, परन्तु इसका वर्णन कहीं नहीं किया गया। लिंग पुराण में कोई ऐसा सूत्र या तार नहीं है जिसमें किसी एक लेखक का व्यक्तित्व प्रतिबिम्बित किया गया हो।

(३) आचार शास्त्र की दृष्टि से

आचार शास्त्र की दृष्टि से अर्थवादों, कथाओं तथा माहात्म्य वर्णनों की समालोचना लिंग पुराण जैसे किसी भी ग्रन्थ की श्रेष्ठता का निर्णय करने के लिये, आवश्यक है कि उस ग्रन्थ में वर्णित स्त्री पुरुषों के परस्पर सम्बन्ध का निरीक्षण किया जाय। इस दृष्टि से लिंग पुराण घटिया स्थिति का ग्रन्थ सिद्ध होता है। लिंग पुराण में स्त्रियों का जो वर्णन किया गया है उससे पता लगता है कि लेखक स्त्री

जाति को भोग का साधन और अस्वतंत्र समझता था। इसके लिए निम्न लिखित उद्धरण हम पाठकों के सामने उद्धृत करते हैं।

गृहस्थ तथा ब्रह्मचारी के लिए ब्रह्मचर्य का उपदेश करने के बाद वैखानसों के विषय में लिखते हैं :—

स्त्रियः सदा परित्याज्याः संगं नैव च कारयेत्।
कुणपेषु च यथा चित्तं तथा कुर्याद्विचक्षणः॥

स्त्रियों का सदा परित्याग करना चाहिए। इनका कभी संग न करे। बुद्धिमान् इन्हें लाश की भांति माने।

विण्मूत्रोत्सर्गकालेषु वहिर्भूमौ यथा मतिः।
तथा कार्या रतौ चापि स्वदारे चान्यतः कुतः।
अङ्गारसदृशी नारी घृतकुम्भसमः पुमान्।
तस्मान्नारीषु संसर्गं दूरतः परिवर्जयेत्।

लिंग पु० अ० ८। श्लोक २१।२२।२३।

मनुष्य जिस प्रकार गृहशौच तथा मलमूत्रोत्सर्ग करते समय बाहर भूमि में संग करता है उसी प्रकार केवलमात्र रतिकाल में अपनी स्त्री का संग करे। अन्य स्त्री का संग न करे।

स्त्री जलते हुए कोयलों के समान होती है। पुरुष घी से भरे हुए घट के समान होता है। इसलिये स्त्रियों का दूर से ही संग छोड़ देना चाहिए।

इन श्लोकों में स्त्री जाति की अंगार के साथ उपमा दी जाती है। उन्हें भोग का विषय माना है। काम या भोगवाद को बढ़ाने वाली केवल स्त्रियाँ ही नहीं होतीं, पुरुष भी इसमें विशेष कारण होते हैं। आदर्श ब्रह्मचर्य रखने के लिये, जिस प्रकार से पुरुषों को स्त्री-संसर्ग से बचने का आदेश दिया है उसी प्रकार से स्त्रियों की दृष्टि से भी उपदेश होना चाहिये। परन्तु इसकी आवश्यकता का अनुभव ही नहीं किया गया। किया भी क्यों जाय, जबकि लिंग पुराण के लेखक स्त्रियों को सर्वथा अस्वतन्त्र समझते हैं! स्त्रियाँ भोग्य वस्तु हैं, यह विचार लिंग पुराण के इस वाक्य से भी सिद्ध होता है।

स्त्रियः सर्वा न हन्तव्या पापकर्मरता अपि॥
न यज्ञार्थं स्त्रियो ग्राह्याः सर्वैः सर्वत्र सर्वदा।
सर्ववर्णेषु विप्रेन्द्राः पापकर्मरता अपि॥

लिं० पु० अ० ७८। श्लो० १८।१९।

पाप कर्म में लगी हुई स्त्रियों की भी हत्या नहीं करनी चाहिए। यज्ञ कार्य में किसी समय भी किसी दशा में स्त्री का ग्रहण नहीं करना चाहिए।

कामतोपि कृतं पापं भ्रूणहत्यादिकं च यत् ।
तत्सर्वं शूलदानेन भिद्यान्नारी न संशयः ।
सायुज्यं चैवमाप्नोति भवान्या द्विजसत्तमाः ।
कुर्याद्विा नरः सोपि रुद्रसायुज्यमाप्नुयात् ।
पौर्णमास्याममावास्यां वर्षमेकमतन्द्रिता ।
उपवासरता नारी नरोपि द्विजसत्तमाः ।
नियोगादेव तत्कार्यं भर्तृणां द्विजसत्तमाः ।
जपः दानं तपः सर्वमस्वतन्त्राः यतः स्त्रियः ।

लि० पु० अ० ८४। १२।१६।

कामवश भी जो भ्रूणहत्यादि पाप हो जाए, तो स्त्री शूलदान से उसे नाश करदे । हे द्विज श्रेष्ठो ! इस प्रकार वह पार्वती का सायुज्य प्राप्त करती है । पुरुष भी यदि ऐसा करे, तो वह भी रुद्रसायुज्य को प्राप्त करे । पुरुष तथा नारी एक वर्ष तक आलस्य रहित होकर पौर्णमासी अथवा अमावस्या में उपवास करें । स्त्रियों को जप, दान, तप, सब पतियों की आज्ञा से करना चाहिए, क्योंकि स्त्रियाँ स्वतन्त्र नहीं हैं । स्त्रियाँ परतन्त्र होती हैं । उन्हें पतियों की आज्ञा से ही कार्य करना चाहिए ।

षोडषस्त्रीसहस्राणि शतमेकं तथाविधम् ।
कृष्णस्य तासु सर्वासु प्रिया ज्येष्ठा च रुक्मिणी ।।

लिं० पु० ६९ अ० ६६ श्लोक

कृष्ण की १६१०० स्त्रियाँ थीं । परन्तु उन सब में उन्हें केवल रुक्मिणी ही सबसे अधिक प्रिय थी ।

इन सब श्लोकों का भाव यह है कि "स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि" के अनुसार, पापिनी से पापिनी स्त्री को भी नहीं मारना चाहिये, अथवा भोग वासना को तृप्त करने के लिये उसको रत्न की तरह संभाल कर रखना चाहिये । इसी भोगकामना को पूर्ण करने के लिये भी यह लिखा है कि भ्रूणहत्यादि भोगकामना के पापमय परिणाम भी शूल दान से मिट जाते हैं । धर्म यज्ञ तप आदि के करने के विषय में भी वह पतियों के अधीन हैं, अस्वतन्त्र हैं । भोगी पुरुष भला कब चाहेगा कि उसकी स्त्री यज्ञ योगादि करके अपने स्वरूप को समझने लगे और उसकी भोग वासनाओं में बाधक सिद्ध हो । महाभारत के योगी कृष्ण के नाम पर, १६ हजार स्त्रियां लिख कर, अपने भोगदारमय सिद्धान्तों का समर्थन किया गया है । परन्तु लेखक महोदय, रामायण की उस घटना को भूल गये हैं, जहां रामने विश्वामित्र की आज्ञा से ताडका को मारा था । यदि स्त्रियों को यह मालूम हो कि उन्हें भी पाप या अधर्म का बुरा फल भोगना पड़ेगा तो वह अपने

जीवन की रक्षा के लिये स्वयं पाप मार्ग से बचें। परन्तु जब उन्हें कहा जाता है कि पाप करने पर भी उन्हें कोई खतरा नहीं तो वह उससे क्यों बचें, और क्यों धार्मिक कामों में प्रवृत हों? यदि उन्हें मालूम हो कि उनका अपना भी धर्म कोई पृथक् पदार्थ है तो वह सुदर्शन या उस जैसे अन्य पापी पतियों की काम वासनाओं या भोग वासनाओं का प्रतिवाद करें। इसी लिंग पुराण में सुदर्शन की कथा का वर्णन है। इससे पता लगता है कि किस प्रकार अस्वतन्त्र स्त्रियाँ पतियों की मूर्खता तथा अज्ञानता के कारण दूसरों की भोगतृप्ति का साधन बनती हैं। इस कथा का प्रारम्भ इन श्लोकों से किया गया है—

गृहस्थैश्च न निंद्यास्तु सदा ह्यतिथयो द्विजाः।
विरूपाश्च सुरूपाश्च मलिनाश्चाप्यपंडिताः॥
सुदर्शनेन मुनिना कालमृत्युरपि स्वयम्।
पुरा भूमौ द्विजाग्र्येण जितो ह्यतिथिपूजया॥

लिं० पु० २९ अ०। ३४ श्लोक

गृहस्थियों को अतिथियों की कभी निन्दा नहीं करनी चाहिये। अतिथि कैसे ही क्यों न हो। सुरूप हों, कुरूप हों, मलिन हों या मूर्ख। द्विजश्रेष्ठ सुदर्शन मुनि ने अतिथिपूजा से स्वयं कालमृत्यु को जीता था।

सुदर्शन ने कालमृत्यु को जीतने की इच्छा से अपनी धर्मपत्नी को कहा कि तुमने घर आए हरेक अतिथि का सब प्रकार से विना किसी संकोच के आतिथ्य करना। अतिथि साक्षात् शिवरूप है। सुदर्शन की स्त्री ने न चाहते हुए भी विवश और संतप्त होकर, पति की आज्ञा को मानना स्वीकार किया। दोनों की परीक्षा लेने के लिए धर्म द्विजोत्तम का रूप धारण करके अतिथि बनकर, उनके घर गया। सुदर्शन बाहर गया हुआ था। स्त्री ने अन्नादि अर्घ्य से उसका स्वागत तथा आतिथ्य किया। इसके बाद वह अतिथि पूछता है कि तुम्हारे पति कहाँ गए हैं, अभी वह कोई उत्तर नहीं देती कि धर्म उस स्त्री को कहता है—शेष कथा श्लोकों में इस प्रकार से लिखी हैं—

अन्नाद्यैरलमद्यार्यें स्वं दातुमिह चार्हसि।
सा च लज्जावृता नारी स्मरन्ती कथितं पुरा॥५५॥
भर्त्रा न्यमीलयन्नेत्रे चचाल च पतिव्रता॥
किं चैत्याह पुनस्तं वै धर्मे चक्रे च सा मतिम्॥५६॥
निवेदितुं किलात्मानं तस्मै पत्युरिहाज्ञया।
एतस्मिन्नंतरे भर्ता तस्या नार्यः सुदर्शनः॥५७॥
गृहद्वारं गतो धीमाँस्तामुवाच महामुनिः।

एह्यं हि क्व गता भद्रे, तमुवाचातिथिः स्वयम् ।।५८।।
भार्यया त्वनया सार्धं मैथुनस्थोहमद्य वै ।
सुदर्शन महाभाग किं कर्तव्यमिहोच्यताम् ।।५९।।
सुरतान्तस्तु विप्रेन्द्र संतुष्टोहं द्विजोत्तम ।
सुदर्शनस्तं प्राह सुप्रहृष्टो द्विजोत्तम ।।६०।।
भुंक्ष्व चैनां यथाकामं गमिष्येऽहं द्विजोत्तम ।

२९अ० श्लो० ५५-६१

इन श्लोकों का शब्दार्थ लिखने का सामर्थ्य हममें नहीं है। श्लोंको का भाव यह है कि वह स्त्री अपने आप को अतिथि की भोग वासनाओं की तृप्ति के लिए समर्पण करती है। उसका पति भी "भुंक्ष्व चैनां यथाकामम्" "तुम यथेच्छ इससे भोग करो" कह कर, जाने को तय्यार हो जाता है। यह कथा केवल काल्पनिक या आलंकारिक हो सकती है परन्तु इस प्रकार की कथाओं का साधारण बुद्धि वाले लोगों पर जो बुरा असर होता है वह किसी से छिपा नहीं है। आज भी इसी प्रकार के विचारों के कारण कितनी स्त्रियां अतिथि रूप में, घरों में आने वाले नामधारी सन्तों के हाथ में अपने आपको भेंट कर देती हैं। लिंग पुराण के लेखक ने देवता के अतिथि रूप के महत्त्व को सिद्ध करने के लिए कहानी लिखी, परन्तु यह नहीं सोचा कि इस कहानी का कमजोर लोगों पर क्या बुरा प्रभाव पड़ेगा ? इसी प्रकार पापी से पापी आदमी को भी लिंग के छूने तथा देखने से पाप मुक्त होने की प्रेरणा करके, लिंग पुराण के लेखक ने अधर्म के लिए रास्ता खोल दिया है। आचार तथा सदाचार की दृष्टि से इस प्रकार की त्रुटियाँ लिंग पुराण में अनेक स्थानों में दिखाई देती हैं। नारद और पर्वत की कहानी में किस प्रकार, विष्णु छलिया बनकर, स्वयंवर में अम्बरीष की कन्या श्रीमती का पाणिग्रहण करता है। यह कथा भी इस दृष्टि से अच्छी नहीं है। इस प्रकार संक्षेप से हमने इस विषय पर विचार किया है। इस प्रकरण को समाप्त करने से पूर्व, यह कह देना अप्रासंगिक नहीं कि आम जनता तथा कुछ पढ़े लिखे विद्वानों में, लिंग पुराण तथा लिंग शब्द के सम्बन्ध में जो गन्दे भाव पाए जाते हैं; उसका लिंग पुराण में कहीं भी जिकर नहीं है। लिंगपुराण में उपरिलिखित प्रकार से भोगवाद का वर्णन अवश्य है, परन्तु वाममार्गियों की भांति पुरुष के लिंग तथा स्त्री की योनि की पूजा आदि का कहीं वर्णन नहीं है। लिंगपुराण के सम्बन्ध में फैले हुए, इस भ्रम को भी दूर करना चाहिए।

इसके बाद धर्म स्वरूप दिखाता है, वर देता है, शंकर की भक्ति का प्रसाद देता है और कहता है कि मैंने इससे भोग नहीं किया, केवल परीक्षा के लिये आया था।

विचारणीय तथा मननीय स्थल

अन्य पुराणों की भांति लिंग पुराण में भी कलियुग का वर्णन मनोरंजक ढंग से किया गया है। इस वर्णन के पढ़ने से मालूम होता है कि कोई साक्षाद्द्रष्टा कलियुग की अवस्था का वर्णन कर रहा है। पुराणों में कलियुग के जो वर्णन हैं उनसे लेखक की दूरदर्शिता का पता लगता है। धनवाद, भोगवाद तथा साम्प्रदायिकतावाद और अज्ञानवाद की वृद्धि के परिणामों का वर्णन किया गया है। आज भी यूरोप में कई ऐसे ऐतिहासिक या अनुमानप्रवीण महानुभाव विद्यमान हैं जो समाज की वर्तमान अवस्था को देखकर दूर के भविष्य का सही चित्र खींच देते हैं। १९१४ ई० में यूरोप में जो बड़ा भारी युद्ध हुआ, उसका वर्णन यूरोप के कई विद्वानों की पुस्तकों में कई साल पूर्व लिखा जा चुका था। लिंग पुराण के इन वर्णनों के पढ़ने से पता लगता हैं कि लेखक की दृष्टि दूर तक जाने वाली तथा समाज की वर्तमान अवस्था के परिणामों को ढूँढने में चतुर थी। इन कलिवृत्तान्तों से पता लगता है कि यदि समाज की अवस्था सुधारनी है तो इन बुराइयों को दूर करना चाहिये। इन बुराइयों को दूर करने के लिये, लिंग पुराण में अनेक स्थलों पर सदाचार सम्बन्धी विषयों का उत्तम ढंग से वर्णन किया है। पाठकों के मनोविनोद तथा मनोरंजन के लिये हम उनमें से कुछ श्लोकों को यहाँ उद्धृत करते हैं।

सदाचारी जपन्नित्यं ध्यायन् भद्रं समश्नुते।
सदाचारं प्रवक्ष्यामि सम्यग्धर्मस्य साधनम् ॥१॥

सदाचारी पुरुष ही जप करता हुआ, ध्यान करता हुआ मंगल को प्राप्त करता है। सदाचार ही धर्म का साधन है ॥१॥

यस्मादाचारहीनस्य साधनं निष्फलं भवेत्।
आचारः परमो धर्मः आचारः परमं तपः ॥२॥

आचारहीन पुरुष के सब काम तथा साधन निष्फल होते हैं। आचार ही परम तप तथा परम धर्म है ॥२॥

आचारः परमा विद्या आचारः परमा गतिः।
सदाचारवतां पुंसां सर्वत्राप्यभयं भवेत् ॥३॥

आचार ही विद्याओं तथा परम प्रतिष्ठा का मूल कारण है। सदाचारी पुरुष सब जगह निर्भय होकर रहता है ।३।

तद्वदाचारहीनानां सर्वत्रैव भयं भवेत्।
सदाचारेण देवत्वमृषित्वं च वरानने ॥४॥
उपयान्ति कुयोनित्वं तद्वदाचारलंघनात्।
आचारहीनः पुरुषो लोके भवति निन्दितः ॥५॥

तस्मात्संसिद्धिमन्विच्छन्सम्यगाचारवान् भवेत् ।
यस्य यद्विहितं कर्म तत्कुर्वन्मत्प्रियः सदा ।।६।।

इसके विपरीत आचारभ्रष्ट मनुष्य कदम-कदम पर भयभीत होता है। सदाचार द्वारा ही देवत्व और ऋषित्व का पद मिलता है। आचारहीन पुरुष निकम्मी योनियों में जन्म लेता है। इसलिये सफलता के अभिलाषी को सदा सदाचारी बनना चाहिए। जिसका जो काम या धर्म है उसे उसी का पालन करना चाहिये।

संध्योपासनशीलः स्यात्सायं प्रातः प्रसन्नधीः ।।
उदयास्तमयात्पूर्वमारभ्य विधिना शुचिः ।
कामान्मोहाद्भयाल्लोभात्संध्यां नातिक्रमेद् द्विजः ।
संध्यातिक्रमणाद्विप्रो ब्राह्मण्यात्पतते यतः ।

मनुष्य को सायं प्रातः प्रसन्न चित्त होकर संध्या करनी चाहिए। सूर्योदय तथा सूर्यास्त से पूर्व, काम क्रोध मोह लोभ आदि किसी भी कारण से संध्या का परित्याग नहीं करना चाहिए। संध्या न करने से मनुष्य ब्राह्मण भाव से च्युत होता है।

शूद्रान्नं यातयामान्नं नैवेद्यं श्राद्धमेव च ।
गणान्नं समुदायान्नं राजान्नं च विवर्जयेत् ।।
अन्नशुद्धौ सत्वशुद्धिर्न मृदा न जलेन वै ।
सत्वशुद्धौ भवेत्सिद्धिस्ततोऽन्नं परिशोधयेत् ।।

शूद्र के अन्न, बासी भोजन, नैवैद्य, श्राद्ध, समुदायों के साझे अन्न तथा राजा के अन्न का यथाशक्ति परित्याग करे। अन्न शुद्धि से ही सत्व शुद्धि होती है। मिट्टी व जल से आत्मा शुद्ध नहीं होता। इसलिये सदा शुद्ध अन्न का ही सेवन करना चाहिये।

असत्यं न वदेत्किञ्चिन्न सत्यं च परित्यजेत् ।
यत्सत्यं ब्रह्म इत्याहुरसत्यं ब्रह्मदूषणम् ।।
परदारान् परद्रव्यं परहिंसा च सर्वदा ।
क्वचिच्चापि न कुर्वीत वाचा च मनसा तथा ।।

झूठ बिल्कुल न बोले और न ही सत्य को छोड़े, क्योंकि सत्य ब्रह्म है, असत्य तो ब्रह्म दूषण है, परस्त्री, परद्रव्य तथा पर हिंसा मन, वचन तथा कर्म्म से कभी कहीं न करे।

इस प्रकार इस प्रकरण में ८५ अध्याय के ३० से लेकर ९० श्लोकों तक सदाचार का विधान है। इसमें कई बातें साम्प्रदायिक दृष्टि से भी लिखी गई हैं, उन्हें छोड़ना चाहिए। परन्तु व्यावहारिक दृष्टि से सार्वभौम सचाइयों का भी अच्छे

ढंग से वर्णन किया है। इसी प्रकार व्यवहार की दृष्टि से निम्नलिखित श्लोक भी द्रष्टव्य तथा स्मरणीय है।

स्त्रीसंगमे तथा गीते द्यूते व्याख्यानसंगमे।
व्यवहारे तथाहारे त्वर्थानां च समागमे।
आये व्यये तथा नित्यं त्यक्तलज्जस्तु वै भवेत्॥

लि० पु० उत्तर भाग ३।६०।६१

स्त्री के साथ समागम करने, गाने, जूआ खेलने, व्याख्यान आदि के समय, लेन देन के व्यवहार में तथा रुपये के अर्थ पुरुषार्थ के इकट्ठा करने में, नित्य के आय व्यय के लेखे में लज्जा को छोड़ कर काम करना चाहिए।

रेरेकारो न कर्तव्यस्तुंतुंकारस्तथैव च।

लिंग पुराण उत्तर भाग १८ अ० । १६ श्लो०

किसी भी मनुष्य को "रे रे" तथा "तू तू" शब्द से सम्बोधन कर के नहीं बुलाना चाहिए।

इतिहास तथा अन्य विद्यान्वेषण में व्यग्र विद्वानों के लिये भी लिंग पुराण के निम्नलिखित स्थल विचारपरम्परा में काफी सहायक सिद्ध हो सकते हैं।

जलस्य नाशो वृद्धिर्वा नास्त्येवास्य विचारतः।
ध्रुवेणाधिष्ठितो वायुर्वृष्टिं संहरते पुनः॥

लिं० पु० पूर्वार्ध अ० ५४।६७ श्लोक

वैज्ञानिक विचारशील लोगों की दृष्टि में इस सृष्टि में न तो जल का नाश होता है और न इस की वृद्धि होती है।

(ख) इसी प्रकरण में षट्ऋतुओं का वर्णन वैदिक नामों के साथ किया गया है। मित्र वरुण शुचि शुक विश्वावसु आदि नामों के प्राकृतिक विज्ञान की दृष्टि से क्या अर्थ हो सकते हैं, उसका थोड़ा बहुत निर्देश यहाँ उपलब्ध होता है।

नवयोजन साहस्रो विस्कम्भः सवितुः स्मृतः।
त्रिगुणस्तस्य विस्तारो मंडलस्य प्रमाणतः॥

सूर्य का विष्कम्भ नौ हजार योजन है मण्डल के परिमाण से उसका विस्तार तिगुना है।

लिंग पुराण के ६९ अध्याय में अग्निविद्या का वर्णन किया गया है। कठोपनिषद् में नचिकेता ने द्वितीय वर से जिस अग्नि विद्या के सीखने की इच्छा प्रकट की है, उसका थोड़ा बहुत वर्णन यहाँ मिल जाता है।

लिंग पुराण अध्याय २४ में "परिवर्त" शब्द का निश्चित अर्थ मालूम हो जाय तो भारतवर्ष के इतिहास तथा संस्कृत साहित्य के विकास पर काफी प्रकाश डल सकता है।

लिंगपुराण पूर्वभाग अध्याय ४४ में नदियों का वर्णन जाम्बूनदी स्वर्णोदका आदि नाम से किया गया है और अन्त में इसी प्रकरण को—

य: पञ्चनदमासाद्य स्नात्वा जप्येश्वरेश्वरम् ।
पूजयेच्छिवसायुज्यं प्रयात्येव न संशय: ।। ४८ श्लो० ।

जो आदमी पञ्चनद में स्नान कर जप्येश्वर की पूजा करता है वह विना किसी सन्देह के शिव पद को पाता है।

इस श्लोक से समाप्त किया गया है। यहां पञ्चनद का क्या अर्थ है ? यदि पञ्जाब अर्थ माना जाय तो इन नदियों के विषय में जिज्ञासा का भाव पैदा होता है। इन नदियों के इस पुराण में यह नाम हैं। यह महादेव की जटा से निकली हैं, जटादेश, इसी जटादेश से वृषध्वनि, जाम्बूनदी स्वर्णोदका आदि नदियां निकलती हैं।

न विषं कालकूटाख्यं संसारो विषमुच्यते ।
८६ अ० लि० पु० ५ मा० ५ श्लो०

कालकूटादि विष विष नहीं हैं। संसार ही विष है।

कालकूट नाम से प्रसिद्ध विष कोई अलौकिक चीज नहीं है, यह संसार का ही नाम हैं।

इसी प्रकार सृष्टि वर्णन के प्रकरणों के विशेष मनन से प्रश्न पैदा होता है कि वराह अवतार हिरण्यकशिपु तथा त्रिपुर को एक पुर बनाने की दन्त कथाओं का असली भाव क्या है ? क्योंकि यदि इनको जीवित जागृत पुरुष या देशविशेष मानें तो इनके सम्बन्ध में लिखे हुए वर्णन असम्भव मालूम होते हैं। इस प्रकरण को हम निम्नलिखित श्लोकों के साथ समाप्त करते हैं।

इन श्लोकों में यह वर्णन किया गया है कि किस प्रकार मनुष्य पहले पहाड़ों और समुद्र के तटों पर रहते थे फिर वृक्षों में, फिर शहर में फिर क्रमश: घर बना कर रहने लगे। साथ ही इन श्लोकों में यह भी वर्णन किया गया है कि किस प्रकार मनुष्य समाज ने धीरे-धीरे अपनी जीविका के साधनों में परिवर्तन किए। सारे उद्धरण को छोड़कर कुछ पंक्तियां पाठकों के सामने पेश करते हैं :—

(१) "पर्वतोदधि वासिन्यो ह्यनिकेताश्रयास्तु ता: ।" १७
(२) "प्रादुरासंस्तदा तासां वृक्षास्ते गृहसंज्ञिता ।।" २२
(३) "द्वन्द्वै: संपीड्यमानाश्च चक्रुरावरणानि तु ।

कृतद्वन्द्वप्रतीघाताः केतनानि गिरौ ततः ।।
पूर्वं निकामचारास्ता ह्यनिकेता यथाभवन् ।
यथायोगं यथाप्रीति निकेतेष्ववसन्पुनः ।।

लिं० पु० अध्याय ३९ । श्लोक । ३३।३४।।

(क) "ईश्वर की बनाई हुई मनुष्य प्रजाएं पर्वत और समुद्रों के प्रान्त भागों में रहती थीं । उनके घर मकान आदि कुछ न थे ।"

(ख) "इसके बाद कुछ समय बीतने पर, वे वृक्षों के आश्रय में, उन्हें ही अपना घर समझ कर, रहने लगे ।

(ग) "सुख, दुःख, शीत, गर्मी आदि से सताये जाने पर उनसे बचने के लिये वही मनुष्य कुछ समय बाद मकान आदि बनाकर उनमें रहने लगे ।

(घ) पहले मनुष्य विना घर बार के टोलियाँ(निकाय)बना कर रहते थे परन्तु धीरे-धीरे अवस्थायें अनुकूल होने पर आवश्यकताएँ बढ़ने पर घरबार बना कर रहने लगे ।

समाज के विकास का इतिहास जानने वालों के लिये यह उद्धरण बहुत उपयोगी सिद्ध होगा । यूरोपियन साहित्य की भांति यहाँ भी मनुष्य समाज की Arborial Stage (वृक्षों में फलादि पर निर्वाह करने की स्थिति) का वर्णन मिलता है ।

इस प्रकार की कई पहेलियाँ पाठकों के सामने रखी जा सकती हैं, परन्तु स्थानाभाव तथा विषयान्तर होने से इसे हम समाप्त करते हैं ।

उपसंहार

लिंग पुराण की श्लोक संख्या के विषय में विशेष मतभेद न होने के कारण इस विषय में कुछ न लिखकर, अपने प्रस्तुत समालोचनात्मक विवरण को समाप्त करते हैं । इस समालोचनात्मक विवरण का उद्देश्य यही है कि लिंग पुराण के विषय में लोगों को यथार्थ ज्ञान कराया जाय ।

लिंग पुराण का अनुशीलन करने के बाद हम इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि लिंग पुराण धर्म-ग्रन्थ नहीं माना जा सकता । इसमें आलंकारिक ढंग से, सृष्टि-उत्पत्ति का वर्णन किया गया है । बीच-बीच में व्यवहारोपयोगी बातों का भी वर्णन होने से हम इसे किसी अंश तक व्यावहारिक नीति ग्रन्थ भी कह सकते हैं । आशा है उदार पाठक, इस समालोचना पर उदारतापूर्वक विचार करेंगे ।

॥ ओ३म् ॥

दयानन्द संस्थान

(पंजीकृत—न्यास) द्वारा प्रकाशित

प्रमुख वैदिक साहित्य की सूचि

१. सम्पूर्ण वेद भाष्य : ४ जिल्दों में	मूल्य २८४)
२. सम्पूर्ण वेद भाष्य : ३ जिल्दों में	२७१)
३. सम्पूर्ण वेद भाष्य : २ जिल्दों में	२५०)
४. सम्पूर्ण वेद भाष्य आर्ट पेपर पर	६०४)
५. यजुर्वेद भाष्य महर्षि दयानन्द कृत सजिल्द	३०)
६. अथर्ववेद परिचय : पं० विश्वनाथ मिद्यामार्तण्ड	५)
७. अथर्ववेदीय चिकित्सा शास्त्र : मिद्यामार्तंड स्वामी ब्रह्ममुनि जी कपड़े की सुनहरी जिल्द (द्वितीय संस्करण)	१५)
८. वेदामृत पृष्ठ ४०० से अधिक : सजिल्द	१०)
९. शतपथ ब्राह्मण (प्रथम काण्ड) : स्वामी समर्पणानन्द जी	२५)
१०. संक्षिप्त महाभारत : स्व॰ पं० सन्तराम	१०)
११. सामवेद भाष्य	२५)
१२. वैदिक गीता भाष्य : सजिल्द १५)	मुनहरी जिल्द २०)
१३. वेदांजलि	सजिल्द १५)
१४. अपने प्रभु से : प्रार्थना	सजिल्द १०)
१५. श्रीमद्दयानन्द प्रकाश :	सजिल्द ८) अजिल्द ६)
१६. अथर्ववेदीय मन्त्र विद्या	सजिल्द ८)
१७. वेदों का यथार्थ स्वरूप	सजिल्द १०)
१८. उपनिषद् संग्रह : महात्मा नारायण स्वामी जी	सजिल्द १०)
१९. वैदिक सत्संग पद्धति (हिन्दी) नया संस्करण	अजिल्द ८० पैसे
२०. वैदिक अर्थनीति—श्रीपाद दामोदर सातवलेकर	४० पैसे
२१. वैदिक अर्थशास्त्र परिचय : पं० भारतेन्द्र नाथ	१)
२२. क्या वेद में मांस भक्षण का विधान है ? लेखक—आचार्य शिवपूजन जी, कानपुर	१)
२३. वेद और बाईबिल—दीनानाथ सिद्धांतालंकार	१)
२४. मोक्ष का वैदिक मार्ग - आचार्य वैद्यनाथ व योगीराज पथिक	१)
२५. वैदिक सिद्धान्त—पं० यशपाल सिद्धांतालंकार	३)
२६. गायत्री शतक—पं० शिवदयालु आर्य	२)

२७. ईश्वर-भक्ति—स्वामी सर्वदानन्द सरस्वती मूल्य १)५०
२८. माँ गायत्री : तृतीय संस्करण १)५०
२९. धर्म का मार्ग—पं० सुरेशचन्द्र विद्यालंकार १)
३०. अमृतपथ—पं० दीनानाथ सिद्धांतालंकार सजिल्द ५)
३१. नारायण अध्यात्म सुधा - श्री महात्मा नारायण स्वामी जी १)
३२. शतक-त्रयी—पं० शिवदयालु जी आर्य १)५०
३३. उपनिषद्-वचनामृत—पं० दीनानाथ सिद्धांतालंकार १)
३४. ईशोपनिषद्—पं० हरिशरण सिद्धांतालंकार १)
३५. उपनिषद् त्रयी—पं० शिवदयालु आर्य १)५०
३६. स्वर्ण पथ—स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती अजिल्द १)५०
३७. वैदिक धर्म ही क्यों ? महात्मा नारायण स्वामी ५० पैसे
३८. महान् अनुपमेय--ऋषिराज स्वामी दयानन्द १)५०
३९. धर्म का का सार : कथाएं १)
४०. आर्याभिविनय (काव्यमय व्याख्या) १)५०
४१. प्रभु के चरणों में—हरिशरण सिद्धांतालंकार १)५०

अन्य उपयोगी साहित्य

४२. ऋषि दयानन्द ने कहा था १)५०
४३. योगेश्वर श्री कृष्ण--स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती ६० पैसे
४४. १८५७ के भूले विसरे शहीद—बनारसी सिंह । १)५०
४५. कल्याण का मार्ग—श्री जगन्नाथ पथिक २५ पैसे
४६. यज्ञ प्रसाद महात्मा आनन्द स्वामी जी ६० पैसे

विवाह पर बांटने के लिए

४७. वैदिक गृहस्थाश्रम—विद्यामार्तण्ड पं० विश्वनाथ जी ८)
४८. धरती का स्वर्ग : गृहस्थाश्रम २)
लेखक पं० शिवकुमार शास्त्री महामहोपदेशक सजिल्द ३)
४९. आदर्श परिवार—श्री युगल किशोर चतुर्वेदी ६० पैसे

आर्यसमाज सम्बन्धी साहित्य

५०. स्वामी दयानन्द (जीवन चरित्र सजिल्द ६) अजिल्द २)
५१. ज्योति स्तम्भ ६)
५२. आर्य क्रांतिकारी—श्री बनारसी सिंह ३)

ईसाईयत सम्बन्धी साहित्य

५३. पोप की सेना का भारत पर हमला २० पैसे

५४. बाइबिल को चुनौती मूल्य २० पैसे
५५. बाइबिल कसौटी पर २५ पैसे

विविध साहित्य

५६. वेद-ज्योति सजिल्द ६) । अजिल्द ४)
५७. बाल-सत्यार्थप्रकाश : स्वामी जगदीश्वरानन्द २)५०
५८. भाई परमानन्द : जीवन चरित्र—बनारसी सिंह २)
५९. वन्दना के स्वर : क्षेमचन्द्र सुमन सजिल्द १५)
६०. बाल्मीकि रामायण : (संक्षिप्त) श्री प्रेमचन्द्र शास्त्री ३)
६१. दयानन्द चित्र-दर्शन २०)
६२. ज्ञान-दर्शन लेखक डा. भवानीलाल भारतीय एम. ए. पी. एच. डी. सजिल्द १०)
६३. दयानन्द चित्रकथा— ५० पैसे
६४. चार फल— ३० पैसे
६५. योग की राह पर : ५० पैसे
६६. पातंजल योगशास्त्र : १)
६७. भारत की अवनति के सात कारण ६० पैसे
६८. शक्ति रहस्य : पं० यशपाल सिद्धान्तालंकार १)५०
६९. बृहस्पति राज धर्म सूत्र : २)
७०. उपनिषद कथा माला : महात्मा नारायण स्वामी १)
७१. अध्यात्म योग : पं० दीनानाथ सिद्धान्तालंकार (कपड़े की जिल्द) ८)
७२, स्वामी श्रद्धानन्द (जीवन परिचय) ४० पैसे
७३. महर्षि दयानन्द का ऐक्यवाद १)
७४. महर्षि दयानन्द ऐतिहासिक संस्मरण १)
७५. राष्ट्रवादी दयानन्द १)
७६. ईश्वर : वैज्ञानिकों की दृष्टि में १५)
७७. जनज्ञान—(शताब्दी विशेषांक) १०)
७८. योग और ब्रह्मचर्य्य (सचित्र) १)५०
७९. कायाकल्प : स्वामी समर्पणानन्द सरस्वती २)
८०. ज्योतिर्मय : टी. एल. वास्वानी १)५०
८१. मुझे आर्य समाज क्यों प्रिय है १)

आदेश के साथ १।४ धन अगाऊ भेजें । रेलवे स्टेशन लिखें ।

दयानन्द संस्थान

वेद मन्दिर, ३१ नाईवाला, करोल बाग नई दिल्ली-५ ।

दूरभाष : ५६६३९/८०१२२१



स्वामी धर्मवेश जी
आप सिंगापुर, मलेशिया, थाईलैंड आदि में प्रचार कर भारत लौट आए हैं। हमें विश्वास है कि आप भविष्य में भी वैदिक धर्म को सेवा करते रहेंगे। —सम्पादक

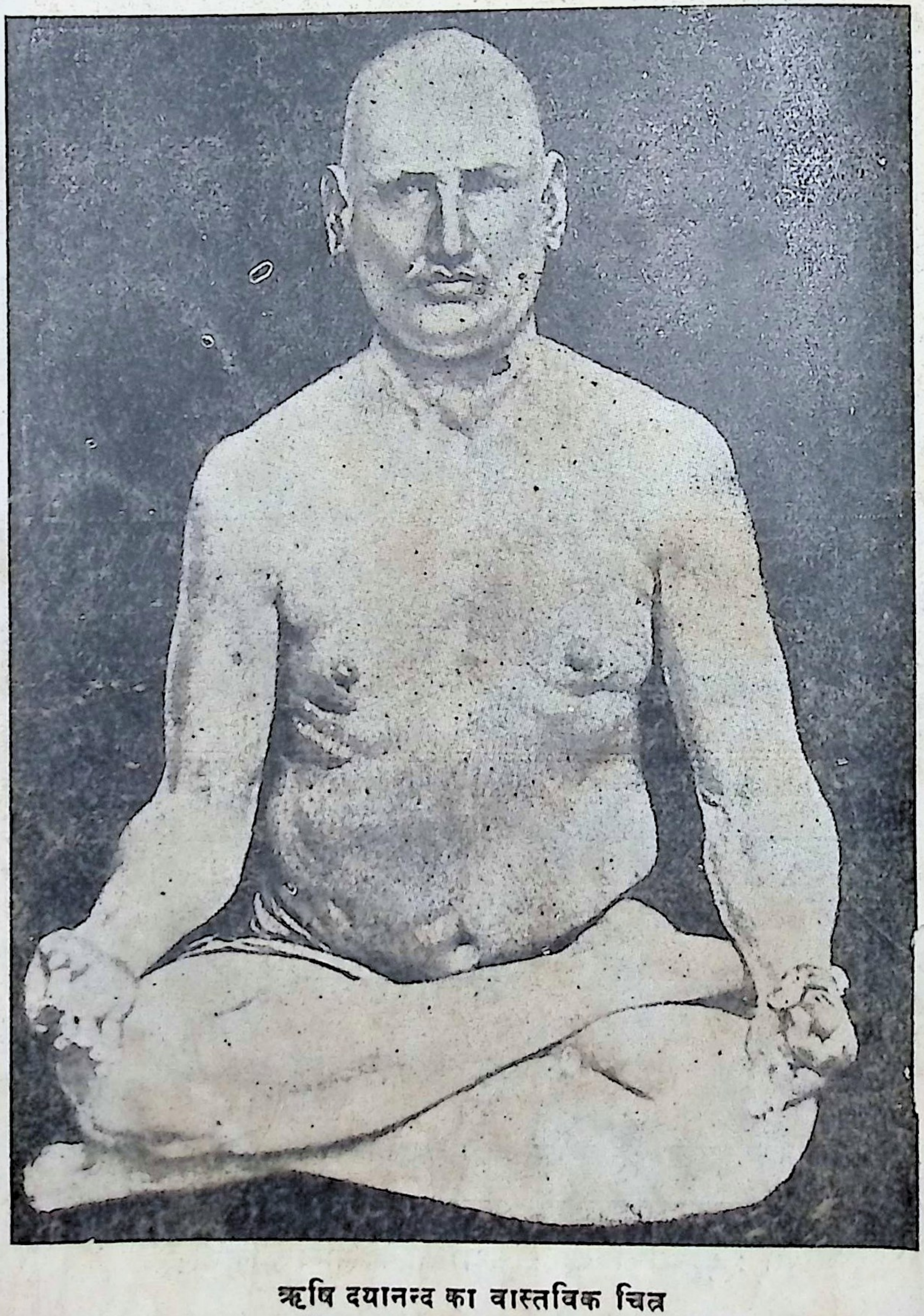


गढ़वा बिहार के श्री लक्ष्मीचन्द जी की पौत्री नन्हीं बेटी : गढ़वा यात्रा में इस से वेद मन्त्र सुनकर हम बहुत प्रभावित हुए।

—सम्पादक

मुद्रक-प्रकाशक-सम्पादक—पं० राकेशरानी द्वारा स्वस्ति प्रेस,
५, रैगड़ पुरा, नई दिल्ली-५ में छपा।

जन-ज्ञान (मासिक) | जुलाई | Regd No. D(C) 201
वेद मन्दिर, दिल्ली-३६ | १९७८ | Regd. No. 107119/75



ऋषि दयानन्द का वास्तविक चित्र

मिर्जापुर वासी पं० सूर्यदेव शर्मा के परिवार को शहीद लेखराम जी ने ऋषि का यह कैमरा चित्र दिया था। उन्होंने कैमरे से खींचा यह वास्तविक चित्र हमें प्रदान किया। वस्तुतः समाधि स्थिति में ऋषि का यह चित्र देश की अनमोल [illegible]